( ॐ तत्सत् )

# सिंहावलोकन ।

"विद्वांसो हि देवाः"

श्री पं० अखिलानन्द जी कविरत्न तथा उनका प्रणीत "अथर्ववेदालोचन" दोनों आर्यजगत् में प्रसिद्ध हैं। दुर्दैव से पं० अखिलानन्द जी आर्य समाज के क्षेत्र से हट कर ऐसे क्षेत्र में उतरे हैं जिस क्षेत्र में कि उतरने की संभावना नहीं थी। समय की विचित्र लीला, मनुष्यबुद्धि की चञ्चलता, और हठवादिता अथवा स्वार्थपरायणता का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। अस्तु हमने—"नवजीवन" में इस पुस्तक का उत्तर देना प्रारम्भ किया था किन्तु "मासिक पत्र" में प्रकाशित छोटे खण्डनात्मक लेखों द्वारा जनता को उतना लाभ नहीं हो सकता था जितना कि पुस्तकरूप में प्रकाशित खण्डनात्मक लेख द्वारा। इसलिये पुस्तक रूप में ही खंडन छपाने का उद्योग किया गया। जिस उद्योग का फल आज आपके संमुख उपस्थित है। श्री पंडित हरिशङ्कर दीक्षित स्वाध्यायी पुरुष हैं। आपने आयुर्वैदिक दृष्टि से अथर्ववेद पर अत्यन्त परिश्रम किया है। कुछ भाग भाष्यरूप में जनता के संमुख आ भी गया है। मेरी प्रेरणा से आपने यह "मीमांसा" लिखी है। और जिस उत्तम गम्भीर भाव से, सरलता व सुन्दरता से उत्तर दिया है वह सर्वथा प्रशंसा के योग्य है "भिन्नरुचिर्हि लोकः"— इस न्याय से किन्हीं पुरुषों को कड़ा प्रतीत होगा। किन्हीं को नरम

प्रतीत होगा। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि वैदिक तथा शास्त्रीय विचार गम्भीरता पूर्वक ही होना चाहिये। सन्तोष का विषय है कि 'दीक्षित' जी ने उत्तर देने में विद्वान् पुरुषों के मार्ग का ही अनुसरण किया है। "वेद" आर्यसमाज के प्राण स्वरूप हैं—"वेद" व "आर्य समाज" का अटूट सम्बन्ध है। वेदों की रक्षा के साथ ही आर्यसमाज का जीवन है। "वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना आर्यों का **परमधर्म** है"—यदि इस **परमधर्म** का ध्यान रक्खा होता तो आज केवल भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु देश देशान्तरों में, पृथिवी के समस्त द्वीप द्वीपान्तरों में भी "आर्य पताका" फहरा जाती। केवल वाचिक ज्ञान की उन्नति न हो कर सक्रिय ज्ञान का प्रसार होता तो संख्या में, गुणों में, विद्वता में, अन्वेषण कार्य में, पुरातत्वविदों में आर्यों का नम्बर सब से ऊँचा होता। एक छोटी सी पुस्तक के निकलते ही आर्यमण्डल में इतनी खलबली मच जाती है और आर्य लोग अनन्यगतिक हो जाते हैं इससे बढ़ कर हीन दशा का प्रबलतर प्रमाण कौनसा होगा? स्वा० हरप्रसाद जी के "वैदिक सर्वस्व"—से आर्य लोग कितने घबरा गये थे? आर्यसमाज के सौभाग्य से अब तक उसके मण्डल में दो चार वैदिक, शास्त्री विद्यमान हैं इसलिये आशङ्का का स्थान नहीं है। परन्तु प्रतिवर्ष ऐसे विद्वानों की संख्या वृद्धि को प्राप्त होगी तब तो कल्याण है, नहीं तो नहीं। हमारे शिक्षणालयों में इस बात का अधिक ध्यान होना चाहिये। अस्तु जैसा समय हम देखना या लाना चाहते हैं उसके लिये उसी प्रकार के साधन भी होने चाहिये। इस "मीमांसा"—में "दीक्षित" जी ने "अथर्वालोचन" के तीन प्रकरणों का उत्तर दिया है—मन्त्रात्मक भाग का उत्तर पृथक् छपेगा और मेरी समझ में मंत्रात्मक भाग का उत्तर पृथक् ही छपना चाहिये। जो लोग "अथर्ववेदालोचन" का उत्तर दूसरे

के लिये उत्कण्ठित थे उनके संमुख यह उत्तर प्रस्तुत है जिसको पढ़ कर उनका भय, भ्रान्ति, आशङ्का आदि दूर होगी। मैं यह भी आशा करता हूं कि इस पुस्तक का खूब प्रचार होगा और मन्त्रात्मक भाग का उत्तर शीघ्र छपाने के लिये "दीक्षित" जी को उत्तेजना मिलेगी। अन्त में पंडित हरिशंकर दीक्षित जी को उनके परिश्रम के लिये आर्यमात्र की ओर से, मैं आशा करता हूं कि आर्यमात्र मुझ से सहमत होंगे, धन्यवाद देकर इस सिंहावलोकन को समाप्त करता हूं सर्वसाधारण की समझ में आ जाय इसलिये पुस्तक में प्रायः "बोलचाल" की भाषा का ही ढङ्ग रक्खा है। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये दीक्षितजी को ऐसा करना पड़ा।

पुनश्चश्च—दीक्षित जी के आग्रह से मैंने यत्र तत्र संशोधन कर दिया है। नगीना आर्यसमाज के उत्सव के अवसर पर श्री पं० नन्दकिशोर देव शर्मा जी (प्रधान आर्यविद्वत्सभा भारतवर्ष) भी पधारे थे। उस समय उन्होंने भी इस पुस्तक के प्रमुख भागों को पढ़ा था और छपाने के लिये हर्षपूर्वक अनुमति दी थी। उनकी अनुमति के अनुसार यत्र तत्र 'निवेश' "प्रतिनिवेश" किया गया है।

वेदतीर्थ नरदेव शास्त्री।

* ओ३म् तत्सद्ब्रह्मणे नमः *

# अथर्ववेदालोचनमीमांसा ।

## भूमिका

पुराकाल में तो यह प्रचार था कि भूमिका विस्तार से लिखी जाती थी परन्तु वर्तमान समय में पाठक वृन्द लम्बी भूमिका से अरुचि प्रकट करते हैं। कितने ही सज्जन तो भूमिका पढ़ना भी अच्छा नहीं समझते। इसलिये हम भी संक्षेप से ही अपना अभिप्राय प्रकट कर सज्जनों को रुचिकर कार्य्य करेंगे। यह तो आपको विदित है कि श्री पं० अखिलानन्दजी प्रसिद्ध पण्डित हैं। कदाचित् ही पढ़े लिखे सज्जनों में उनको कोई न जानता हो। आपने आर्य्यसमाज में भी बहुतकाल पर्यन्त कार्य्य किया है। मुझको आप से बहुत मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ; सुनते हैं कि आप संस्कृत के अच्छे पण्डित हैं। आप कुछ काल से किन्हीं कारण विशेषों से समाज से रुष्ट हो कर धर्म्मसभा में कार्य्य करते हैं। आपने (अथर्ववेदालोचन) इस नाम का एक पुस्तक बनाया है जिसमें वेदों के विषय की बहुत कुछ चर्चा है। यह पता तो वाचक वृन्द को तभी विदित होगा कि यह वेद विषय की चर्चा कहां तक ठीक है जब कि स्थल २ पर इसकी मीमांसा करके दिखाई जायगी। सम्मति तो केवल इस ग्रन्थ में उसी चर्चा का विशेष है जिसके ऊपर अनेकवार यत्र तत्र विचार हो चुका है। कोई नवीन वार्ता दृष्टिगत नहीं होती। मुझे भी इस ग्रन्थ के देखने की उत्कण्ठा चिरकाल से थी परन्तु पुस्तक न मिलने के कई कारण हुए। मैंने स्वयं तो मंगाना नहीं

चाहा। बिना मूल्य कहीं से मिला नहीं। गत मास में एक बार मुझे वेदतीर्थ श्री० पं० नरदेव शास्त्री जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने इस ग्रन्थ के देखने की ओर मेरी रुचि को बढ़ाया और यह भी कहा कि यदि योग्य समझो तो कुछ उसके विषय में लिखना भी, मैंने कहा इच्छा तो मेरी इस ग्रन्थ के देखने की चिरकाल से है, परन्तु पुस्तक मिली नहीं आप ही कृपा करके दीजिये। आपने उत्तर दिया कि मैं लिख दूंगा पुस्तक आपके नाम आजायगी। श्री० पं० जी ने मेरे नाम वी० पी० का पत्र भेज दिया परन्तु पुस्तक एक पक्ष पर्य्यन्त न आई। मैंने भी एक पत्र लिखा, मेरे पत्र पर भी न आई। मेरे मित्र पं० लक्ष्मीनारायण जी ने अपने नाम से मंगाई तब पुस्तक मिली। मैंने पुस्तक को मुखपृष्ट से आरम्भ करके अन्त के पृष्ट पर्य्यन्त विचार पूर्वक अवलोकन किया। पुस्तक देखने से जो कुछ मुझे विदित हुआ उसका उल्लेख तो यहां वृथा है। कारण कि इन विषयों पर मुझे जो कुछ वक्तव्य है वह आगे कहूँगा ही पुनः यहां कहना व्यर्थ सा प्रतीत होता है। इस स्थल पर तो थोड़ी सी बानगी पाठकवृन्द को इस ग्रन्थ के नाम को दिखाते हैं। कारण कि आगे के प्रकरणों में इस विषय को अवकाश नहीं मिलेगा। आपने अपने ग्रन्थ का नामकरण किया है— "अथर्ववेदालोचन" यह नाम ग्रन्थ का सार्थक नाम है वा केवल रोचकता को ही लिये हुए है? सम्प्रति भारत के नेताओं में प्रायः यह परिपाटी देखी जाती है कि व्यक्ति तथा वस्तु का नाम रोचक हो चाहे उस व्यक्ति वा वस्तु में नाम के गुण हो वा न हो। ऐसे नामों को प्रकट करके हम नाम धरांओं को कष्ट करना नहीं चाहते, वे स्वयं ही विचारलें। सार्थक नामकरण न करना भी एक प्रकार का पाप है? यदि कहो कि पाप क्यों है। तो उत्तर यह होगा कि सार्थक वाक्य न कहना निरर्थक होता है। निरर्थक प्रलाप है।

प्रलाप दूसरे अर्थों में असत्य और अनर्थ पाप है। पूर्वज ऋषिगण इस प्रकारके नामों की रचना कि जिनमें रोचकता हो और अर्थ कुछ न निकले पाप मानते थे, पाप करने वाला पापी होता है। पाप का फल नरक है। तभी तो वे अपने ग्रन्थों का नाम या तो केवल अपने नाम पर रखते थे, या ग्रन्थ का भाव नाम से प्रकट हो ऐसा रखते थे। वेदों से लेकर शास्त्रों पर्य्यन्त ग्रन्थों के नामों का स्मरण कीजिये। यदि और खोज करके देखाजाय तो पुराणों के कर्ताओं ने भी ऋषियों की इस शैली का उल्लङ्घन नहीं किया। पुराणों के नाम भी प्रायः सार्थक ही मिलेंगे। "अथर्ववेदालोचन" नाम सार्थक नहीं। केवल ग्रन्थ के नाम को शोभायमान बनाया गया है। नामकरण करते समय विद्वत्ता को लोकप्रवाहके वेग में लपेट कर रख दिया और ऋषियों की शैली का उल्लङ्घन किया। वेदों का अनादर कर महापाप कमाया। पढ़ीलिखी जनता को यह अच्छे प्रकार विदित है कि शब्द दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे शब्द होते हैं जिनका स्वरूप शास्त्रों में कुछ और है और व्यवहार में कुछ और है। दूसरे शब्द वे हैं जिनका व्यवहार नित्य प्रजागण में होता है। चाहे शब्द व्याकरण से वा शास्त्रों में शुद्ध हो परन्तु लोक व्यवहार में जहां उसका प्रयोग होता है उससे अन्यथा करना लोकविरुद्ध है। उदाहरण के लिये देखिये रामनाम वा ओम् नाम सत्य है। इस शब्द का प्रयोग लोकमें मृतक देह को ले जाते समय जनता में होता है। यदि कोई पुरुष विवाह में पाणिग्रहण के समय वर कन्या को उठाते समय कहे कि बोलो ओ३म् नाम सत्य है तो कितना अनुचित प्रतीत होगा? शास्त्रमें शब्द के अर्थ बुरे न हों, परन्तु लोक व्यवहार में उनका प्रयोग जहां होता है वहीं होना अच्छा है। इस प्रकार के व्यवहार करने वाले को यदि उस समय पूजा भी होजाय तो आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार (आलोचन) (आलोचनं चक्षुर्विज्ञानम्)

आलोचन शब्द वस्तुमात्र की स्थूलता कृशता वा ह्रस्वत्व दीर्घत्व अथवा श्वेतता पीततादि अर्थों में संस्कृतज्ञों ने प्रयोग किया है। ज्ञान से देखने अर्थ में आलोचन शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं होता, परन्तु सम्प्रति लोक में पुस्तकों के देखने आदि में व्यवहार करते हैं इस हेतु शब्द चाहे अच्छी प्रकार देखने के अर्थों में हो परन्तु पढ़ी लिखी प्रजा में इस शब्द का व्यवहार मनुष्यकृत कार्यों की परस्पर बुराई भलाई देखनेके अर्थमें आता है। जहां वेदों की आलोचना होती है वहां तो नास्तिकता का पूर्ण राज्य है। नास्तिक ईश्वर के अस्तित्व को न मानते हुए ही उसके विषय में कुछ कहने का साहस करते हैं। यहां तो जगत् का कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता और उसके कथन को अपना सर्वस्व मान कर उसकी आलोचना हो रही है। क्या यह थोड़ा पाप है। हमारे जानने में तो इस पाप से निष्कृति होना दुस्तर ही है। कहा भी है (कृतघ्नस्य न निष्कृतिः) वेदों की व्याख्या करने वाले अनेक ऋषि हो गये। वेदों के शाखा, क्रम, जटा, घन्नी ब्राह्मण भाष्य, सभी बने परन्तु आलोचन करने का साहस किसी ने नहीं किया। शायद ऐसा प्रतीत होता है कि यह अनुकरण आपने अपनी प्रसिद्धि के अर्थ एक प्रसिद्ध पं० का किया है। आचार्य श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने अपने दो ग्रन्थों का नाम इसी ढंगपर रक्खा है। ऐतरेयालोचन, और निरुक्तालोचन; परन्तु उन्होंने तो अपने पहले के ही पुरुषों के कथन की आलोचना की है ईश्वर वाक्य की तो नहीं। इस अनुकरण का फल क्या मिला। घोड़े के पैरों में नाल जड़े जाते थे, मेंढक ने भी अपने पैरों में नाल जड़वाने की इच्छा की, एक ही कील लगने से प्राण पखेरू उड़ गये। ग्रन्थ कर्त्ता ने अनुकरण करते समय केवल ग्रन्थ की रोचकता और प्रसिद्ध पण्डित के अनुकरण से अपनी ख्याति का ध्यान तो रक्खा परन्तु इस महापाप के शिर पर पड़ने का ध्यान नहीं रक्खा। जब

यह नामकरण ही अपने गुणों को दिखा रहा है तब फिर अग्रे स्थालीपुलाकन्याय से भी यही निकलेगा ( ज्ञानं पितुर्भ पाण्डित्यं ढुंढई नाम दर्शनात् ) शेष बातों का पता वाचक वृन्द को स्थल स्थल पर लगेगा। अब मैं अपने दोनों महानुभावों को जिनकी महती कृपा से यह ग्रन्थ मुझे देखने को मिला, धन्यवाद देता हुआ भूमिका को समाप्त करके परमात्मा से प्रार्थी हूँ कि वह मुझे इस प्रपञ्च के प्रकट करने में सर्व प्रकार की शारीरिक आत्मिक कुशलता प्रदान करे। ओ३म् शम्।

हरिशङ्कर दीक्षित

भूमिका के अवलोकन से पाठकवृन्द को यह तो भली प्रकार विदित होगया होगा कि ग्रंथ का नामकरण किस बुद्धिमत्तासे किया गया है। अग्रे ग्रन्थ भर में इसी प्रकार अयुक्त वार्त्ताओं का समावेश किया गया है। यद्यपि ग्रंथका उत्तर देना अपना काल यापन करना है कहा भी है कि ( अविचारयतो युक्तिः कथनं तुषकण्डनम् ) बिना विचारे जो बात कही जाय उसका निराकरण करना केवल तुषों का कूटना मात्र है। तुष कहते हैं धान की पुच्छ को। उस के कूटने से न तुस को ही लब्धि है और न धान्य की। तथापि दिग्दर्शन मात्र कराना इस हेतु से अवश्य प्रतीत होता है कि ( अतथ्यस्तथ्योवा हरति महिमानं जनरवः ) चाहे वार्ता असत्य हो व सत्य हो जिसको बहुत से मनुष्य एक मुख होकर कहने लग जायँ उस जनरव से पदार्थकी महिमा में दोष हो जाता है। आर्य्य समाज के जन्मदाता का जन्म ही धरातल पर वेदोंकी रक्षार्थ हुआ था। इसमें कोई सन्देह भी नहीं कि यदि हृदय से विचार कर और पक्षपात की जवनिका को हटा कर गम्भीर दृष्टि से देखाजाय तो उन्होंने वेदों को पुनः वैसा ही करके जनता के सामने रख दिया

जैसा कि वेद ऋषिकाल में थे। सम्प्रति आर्य्यसमाज के नेता अपने को आर्य्यसमाज के जन्मदाता का उत्तराधिकारी मानते हैं। इनका ऐसा मानना तभी सफल होना सम्भव है जब कि वे भी वेदों की रक्षा करना आर्य्यसमाज के जन्मदाता की भांति अपना कर्त्तव्य समझें। इत्यादि अनेक कारणों से अथर्ववेदालोचन की निस्सारता दिखाना हमारा परम कर्त्तव्य है। अब आगे ग्रंथ की सारता तथा असारता पर विचार करते हैं। सज्जनगण उसका विचार निष्पक्ष होकर करें। ग्रन्थ के विषय में कथन करने के पूर्व हम अपने ग्रन्थ में आने वाले संकेतों का विवरण करना अच्छा समझते हैं जिससे कि वाचकवृन्द को ग्रन्थावलोकन में सुगमता प्राप्त हो। हम इस ग्रन्थ का उत्तर देना इस प्रकार चाहते हैं कि जिससे एक ही के अवलोकन से दोनों का अभिप्राय प्रकट हो जाय। इस हेतु से हम (उक्तिः) इस शब्द से तो अथर्ववेदालोचन के कर्ता का भाव रक्खेंगे। और (प्रत्युक्तिः) इस शब्द से अपने विचारों को प्रगट करेंगे। जहां २ "उक्तिः" शब्द आये वहां भी असाधारण विचार से देखें कि ग्रन्थकर्त्ता क्या कहता है। फिर "प्रत्युक्तिः" पर भी इसी प्रकार विचार करें। सामान्य दृष्टि से देखने पर कथन का रहस्य अच्छी प्रकार हृदयङ्गम नहीं होता अथर्ववेदालोचन का आरंभ प्रस्तावना से होता है। प्रस्तावना में ग्रन्थकर्त्ता ने प्रथम अथर्ववेद की उत्पत्ति का वर्णन किया है। इस प्रस्तावना में किया हुआ कथन कुछ महत्व को लिये हुये नहीं कारण कि पिष्टपेषण है। यद्यपि इस प्रकार के विषय तो आर्यसमाज के जन्मकाल से ही उठते चले आये हैं, अनेक बार इसपर विचार हो चुके हैं। तथापि इस पर कुछ विचार करना अच्छा प्रतीत होता है। ग्रन्थकर्त्ता ने अपने विद्याबल से इसे अकाट्य प्रबल प्रमाण जान करही इस विषय को उठाया प्रतीत होता है। एक यह भी कारण विशेष इस

पर विचार करने का प्रतीत होता है कि साधारणज्ञान वालों जनता प्रत्यक्षर उत्तर से सन्तुष्ट होती है।

## [ उक्तिः ]

### प्रस्तावना—

**ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव, विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह। १।**

विश्व का कर्त्ता और भुवन का गोप्ता देवताओं में प्रथम ब्रह्मा हुआ। वह समस्त विद्याओं में प्रतिष्ठित वेद विद्या को* ज्येष्ठ पुत्र अथर्व के प्रति कहने लगा।

**अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वातां पुरोवाचां गिरे ब्रह्म विद्याम्। स भारद्वाजाय सत्वाहाय प्राह। भारद्वाजो गिरि से परावराम्। २।**

ब्रह्मा ने जिस वेदविद्या को अथर्व के प्रति कहा, अथर्व ने उसी को अगाड़ी अंगिर के प्रति कहा। अंगिर ने भरद्वाज के प्रति कहा। और भरद्वाज ने उसी परावरविद्या को अंगिरस के प्रति कहा। अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् की इन दोश्रुतियों से वेद मात्र का प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा सिद्ध होता है।

---

* वेदविद्या अपरा विद्या है, ब्रह्मविद्या, परा विद्या। कविरत्नजी इतना भेद न समझ सके और 'ब्रह्मविद्या' का अर्थ 'वेदविद्या' कर दिया। यहीं से 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः' हुआ प्रायः सब स्थानों पर कविरत्नजी ने ऐसा ही अनर्थ किया है ( वेदतीर्थः )।

अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने त्वामग्ने पुष्कारा-दध्यथर्वा निरमन्थत । ११-३२ यज्ञै रथर्वा प्रथमः प्रथम पथस्तने । १ । ८३ । ५ ।

ब्रह्मा से प्राप्त हुए वेदका चार विभाग करने वाला* और यज्ञादि क्रियाओं का प्रथम प्रवृत्त ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा हुआ । उसी ने वेद के एक विभाग को अपने नाम से विख्यात किया । और उसी को ( अथर्वाङ्गिरसां मुखम् ) कह कर मुख्य कर दिया । बाक़ी विभागों को लोमादि की उपमा दे दी ।

मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारद मेवच । १ । ३५ ।

(मूल में शब्दों के ऊपर क्रमांक १ से १० छपे हैं।)

मनु के इस प्रमाण से ब्रह्मा के दश पुत्रों में अङ्गिरा तीसरी संख्या में आता है । और मुण्डक की श्रुति उसको चौथी संख्या में रखती है जो हो इस मत भेद से हमारा कोई संबन्ध नहीं है । हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि वर्तमान अथर्वमें जिस प्रकार दशकाण्ड अथर्वा के बनाए हुए हैं, उसी प्रकार दशकाण्ड अङ्गिरा के भी बनाये हुए हैं । इसीलिए इसका पूरा नाम अथर्वाङ्गिरोवेद है †

इस वेदका पूरा पूरा रहस्य जानने वाला ब्रह्मा का अष्टम पुत्र वसिष्ठ हुआ । इसीलिये उसको प्राचीन कवियों ने अथर्वनिधि कह कर संबोधित किया है । कोई २ पुरुष ऐसा भी कहते हैं कि हिंसा

---

* विदित नहीं यह अर्थ कविरत्नजी ने कहां से किया भूल से तो नहीं निकलता ( वेदतीर्थः )

† ये दश दशकाण्डों का विभाग किस प्रमाण के आधार पर है ? ( वेदतीर्थ )

न होने के कारण इस वेद का नाम अथर्वा होगया है। परन्तु उन की यह कल्पना सर्वथा असार है। इस वेद का जो निरन्तर स्वाध्याय करेंगे उनको इस बात का स्वयं पता लग जायगा।

इस वेद में कई सूक्त इस प्रकार के भी हैं। जिनका संबंध केवल स्त्रियों से है। और उनमें ग्राम्य धर्म्मका ही अधिक वर्णन है। तथा उसकी विधि शौनक सूत्र में वर्णित है। इसीलिये शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण में इस प्रकार की एक आख्यायिका आती है कि जब अश्वमेध यज्ञ समाप्त हो जावे तब पहिले दिन गृहस्थों को ऋग्वेद दूसरे दिन वृद्धों को यजुर्वेद तीसरे दिन युवकों को अथर्ववेद और चौथे दिन स्त्रियों को अङ्गिरस वेद सुनाना चाहिये। इसी विषय का एक मन्त्र भी उसमें।

युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति ता उपदिशत्यां गिरसो वेद इति।

इस प्रकार मिलता है। जिन सूक्तों का स्त्रियों में बैठकर सुनाना लिखा है वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण और आनन्द परम्परा से परिपूर्ण हैं। उनका विशेष रहस्य इसी ग्रन्थ के मन्त्र भाग में पाठकों को मिलेगा।

## [प्रत्युक्तिः]

ऊपर का समस्त लेख अविकल रूप से ग्रन्थकर्त्ता का है ग्रन्थ कर्ता ने इस लेख से यह सिद्ध करने का साहस किया है कि अथर्व वेद का कर्त्ता अथर्वा और अंगिरा हैं। साथ ही में यह विवाद भी इस लेख में उठाया है कि स्वामी जी का यह कथन मानने योग्य नहीं कि वेदों का प्रकाश ऋषियों पर हुआ है। सनातन से वेदों का प्रकाश ब्रह्मा के द्वारा ही होना सिद्ध होता है। प्रथम तो इस विषय पर पूर्व से ही विवाद चला आता है यदि ऋषियों द्वारा वेदों का

प्रकाश होना स्वामी जी का निज मत होता तो यह लाञ्छन भी ठीक था। यदि इस विषय का न मानना आपको इष्ट है तो मनु तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में से इस लेख को निकाल डालिये। स्वामी जी से इसका उत्तर मांगना वृथा है। हमें तो दोनों मत स्वीकार हैं ऋषियों द्वारा प्रकट हुए और ऋषियों से ब्रह्मा ने पढ़े। प्रथम तो यह विषय उठनाही नहीं चाहिये कारण कि विवाद का मुख्य स्थल वेद है। उदाहरण जैसे एक ऋण पत्र लिखा जाता है, वह उत्तमर्ण और अधमर्ण दोनों को स्वीकार है यदि उस पर यह विवाद उठाया जाय कि इसका लिखने वाला अमुक है दूसरा कहे कि इसका लिखने वाला अमुक है; एक कहे कि अमुक का लिखा होने से तो स्वीकार यदि अमुक इसका लेखक है तो स्वीकार नहीं। जब ऋणपत्र दोनों को स्वीकार है तो फिर लेखकों का अड़ंगा लगाना यह सिद्ध करताहै कि यातो वादी को शास्त्रकी रीतिही विदित नहीं; यदि है तो अपने पक्षकी निर्बलतासे समय टाल देना इष्टहै। इतना बड़ा विवाद उठाकर केवल अपना और जनता का समय नष्ट करना है। हम इस विषय पर कुछ लिखने की आवश्यकता भी नहीं समझते थे परन्तु ग्रन्थकर्ता ने इस प्रमाणको अकाट्य समझ ग्रन्थके आदि ही में दिया है इस से संक्षेप से कहने की आवश्यकता समझ कुछ कहते हैं। इस उपनिषद् के प्रमाण को हम असत्य नहीं मानते कारण कि १२ उपनिषदों को श्री स्वामी शंकराचार्य्य जी ने तथा श्री स्वामी दयानन्द जी ने शुद्ध और निर्दोष माना है। ग्रंथ की वार्ता असत्य होने से ग्रन्थ भी असत्य होगा इत्यादि हेतुओं से उपनिषद् की गाथा किसी काल विशेष के विषय को वर्णन करती है। बहुत विचार करने से यह विदित होता है कि ऋषिकृत ग्रंथों में जो नाम आते हैं वे उपाधि विशेषों के प्रतीत होते हैं। एक नाम के असंख्यों पुरुष तथा स्त्री सृष्टि में हो चुके और होंगे। यदि वेदानुकूल आयु का

प्रमाण माना जाय तो १०० वर्ष की होती है। योग क्रिया के द्वारा अधिक से अधिक ४०० वर्ष पर्य्यन्त भी मानी जा सकती है। यदि पुराणों के कथन को भी मान लें तो सतयुग में एक लक्ष की अवस्था बताई गई है यद्यपि यह कथन मानव शरीर की बनावट देखने से सर्वथा ही असत्य है परन्तु दुर्जन तोष न्याय से हम अधिक से अधिक एक लक्ष की माने लेते हैं। नारदादि ऋषियों की गाथा और ब्रह्मा का प्रत्येक युग में किसी न किसी स्थान पर आना पुराणों की गाथाओं से सिद्ध है। यदि ब्रह्मा को ईश्वरीय सृष्टि रचना की ब्रह्मा विष्णु शिव इन शक्तियों में मानो तब तो बेटे पोते प्रपौत्रादि नहीं बनते यदि ब्रह्मा के पुत्र पौत्रादि को मानो तो कोई व्यक्ति विशेष माननी पड़ेगी। यदि पुनः दुर्जनतोष न्याय से ब्रह्मा को हम उसी शक्ति में से मान लें तो नारदादि जिनका कृतयुग से द्वापर युग पर्य्यन्त सब युगों में आना देखा जाता है मनुष्य देह धारियों से अतिरिक्त मान ही नहीं सकते। मनुष्यकी आयु का प्रमाण ऊपर हम अधिक से अधिक एक लक्ष ग्रंथकर्त्ता के मतानुकूल बता चुके हैं। यह मान कि आयु का हमें मन्तव्य नहीं। मैं तो ( शतायुर्वै पुरुषः ) ऐसा ही मानता हूँ। तब भी एक युग से लाखों से ऊपर ही कही गई है। मानवदेहधारी का एक युग से दूसरे युग पर्य्यन्त पहुँचना असम्भव है। परन्तु जिन ऋषियों का वर्णन कृतयुग की गाथाओं में आता है उनका ही त्रेता द्वापर कलि आदि युगों की गाथाओं में आता है। ग्रन्थ कर्ता की प्रसन्नता के अर्थ उन्हीं की मानी आयु भी एक युग से द्वितीययुग पर्य्यन्त नहीं प्राप्त होती। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि ये उपाधियों के नाम हैं। जिस काल में जो व्यक्ति उस उपाधि के योग्य हो वह उसी नाम से पुकारा जाय। लोक का व्यवहार किसी न किसी रूपमें सर्वदा बना रहता है। चाहे शब्द समय के हेर

फेर से कुछ के कुछ व्यवहार में आने लगे, परन्तु व्यवहार ज्यों का त्यों बना रहता है। उदाहरण के लिये अवलोकन कीजिये। यवन-राज्य में काज़ी मुल्ला उपाधियां विदित होती है ३००, ४०० वर्ष के पूर्व जिसका अभियोग गया काज़ी के न्यायालय में वा मुल्लाओं ने किसी अभियोग पर व्यवस्था दी, इतिहासों से यही विदित होता है। वर्त्तमान में भी लेफ़टिनेन्ट, वाइसराय, वोर्ड, कमिश्नर, कलक्टर ये अधिकारों के नामकरण हैं। व्यक्ति विशेषों के नहीं। आप बहुत दूर न जाइये सम्प्रति दो दयानन्द आपके समक्ष उपस्थित हैं एक आर्य्यसमाज के जन्मदाता और द्वितीय धर्मसभा के मन्तव्यों के प्रतिपादक आगे चलकर दोनों का विरोध उस समय की जनता को इस सन्देह में डालेगा कि यहां तो दयानन्द मूर्तिखण्डन कर्त्ता है और दूसरे स्थान पर मण्डन इसी प्रकार सर्वदा से अनेक नामों में से एक नाम के अनेक पुरुष होते चले आये हैं। उनके लिये बिना विचारे यह हठ करना कि नहीं ये तो वेही हैं, विचारशीलों को योग्य नहीं। विचारशील सज्जनों के विचारार्थ तो वर्त्तमान का व्यवहार बहुत कुछ सहायता देता है। भूत भविष्यत् कालो का समावेश वर्त्तमान में रहना है। वर्त्तमान काल भूत और भविष्यत् का केन्द्र है। भूत तथा भविष्यत् वर्त्तमान केन्द्र ही से पीछे और आगे को चलते हैं। विचारशील इस पर पूरा ध्यान दें तो भूत और भविष्यत् दोनों कालों के व्यवहारों को हस्तामलकवत् कर सकता है। इत्यादि हेतुओं से आप के दिये उपनिषद् प्रमाण किसी अन्य काल की घटना विशेष हो इसमें हमें कुछ वक्तव्य विशेष नहीं, परन्तु आपका यह सिद्ध करना कि अथर्ववेद का प्रादुर्भाव इसी ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा पर हुआ है अथर्ववेद से आपकी अनभिज्ञता प्रकट करता है। कारण कि अथर्ववेद जिसको अथर्वा और अंगिरा बताता है वह कोई व्यक्ति विशेष नहीं। आपने अथर्व के तो कई

पारायण करे ऐसा आपके लेख से विदित होता है । अथर्व ब्राह्मण गोपथ का भी दर्शन किया वा नहीं ? यदि करते तो ऐसा कहने का साहस न होता । देखिये अथर्व का ब्राह्मण गोपथ क्या कहता है । (आपो भृग्वङ्गिरा रूपमापो भृग्वङ्गिरोमयम् । सर्वमापो मय भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयम् । अन्तरे ते त्रयो भृग्वङ्गिरसोऽनुगाः) जल ही भृगु और अंगिरा रूप है । जल ही भृगु अंगिरामय है । यह सब कुछ जलमय है । इसीसे यह सब भृगु अंगिरामय है । भृगु और अंगिरा के अनुकूल होने से अन्य तीन वेद भी इसी के अन्तरगत हैं । मन्त्र में भृगु और अंगिरा शब्द ब्राह्मण का अभिप्राय यह है कि ब्रह्माने सृष्टि रचना काल में ठसाठस रूप से समस्त स्थानों में परिपूर्ण प्रकृति को पूर्व तरल भाव को प्राप्त किया । उस तरल भाव को ब्राह्मण जलसंज्ञा से ग्रहण करता है । उस तरल भाववाली प्रकृति को और सूक्ष्म रूप बनाने पर उसकी परम सूक्ष्मावस्था को भृगु और इस सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल को अंगिरा कहता है । यह व्यवहार लोक में अद्यावधि चला आता है । स्वर्णकारादि स्वर्ण के कुण्डलादि बनाते समय पूर्व स्वर्ण को अग्नि के द्वारा तरल भाव वाला करलेता है । मन्त्र में सबको भृगु अंगिरामय बताकर यही जताया है कि यह समस्त रचना सूक्ष्म और स्थूल दो दशाओं से परिपूर्ण है । अथवा यूँ समझो की भृगु सूर्य्य और अंगिरा चन्द्रमा है । भृगु और अंगिरा शब्द से सृष्टि रचना के दो ही कारण दिखाये हैं । एक शीत द्वितीय उष्ण इसी के अनुसार प्रश्नोपनिषद कहती है (रयिश्चप्राणश्च) यह उपनिषद भी अथर्ववेद का ही है । सुश्रुताचार्य्य ऋषिवर धन्वन्तरि जी चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र अथर्व का उपाङ्ग (इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य) बताते हैं । उन्होंने भी रचना के दोही कारण मुख्य माने हैं । एक शीत और द्वितीय उष्ण । इनदो आचार्यों की सम्मति गोपथके अनु-

कूल ही है। तीसरा मनु भी ब्राह्मण के अनुकूल ही जल से सृष्टि मानता है। अथर्व के उपदेश का आधार रूप भृगु और अंगिरा हैं। आपने जिन मन्त्रों को प्रमाण में दिया है वे किसी विशेष काल का वर्णन करते हैं। आपके द्वितीय मन्त्र से हमारे पिछले कथन की पुष्टि तो होती है पर वह आपके मत को पोषण नहीं करता। आप के मंत्र का अभिप्राय है कि "ब्रह्मा अथर्व के अर्थ देता हुआ और अथर्वा उसको अङ्गिरा के लिये कहता हुआ। अंगिरा ने भारद्वाज के अर्थ कहा भारद्वाज ने सत्यवाह के अर्थ, भारद्वाज ने पुनः अंगिराके लिये कहा।" क्या अङ्गिरा उसको भूल गया था जिसको पूर्व अथर्वा से पढ़ा था! मन्त्र में एक ही व्यक्ति का नाम दो बार आने से यह विदित होता है कि एक नाम की अनेक व्यक्तियां कालान्तर में होती आती हैं। जब २ जिसने जिससे ग्रहण किया उसी समय में उसका वर्णन हुआ। इत्यादि हेतुओं से उपनिषद् की गाथा किसी विशेष काल की है। अथर्व का प्रादुर्भाव इस प्रकार मानना वेद मर्मज्ञों की दृष्टि में अवश्य खटकेगा। अग्रे जो आपने अंगिरा को ब्रह्मा का पुत्र सिद्ध किया और मनु के श्लोक का प्रमाण भी उसमें दिया है, ये दश पुत्र भी ब्रह्मा के व्यक्ति विशेष नहीं प्रतीत होते, कारण कि प्रथम तो मनु सृष्टिरचना के आदिकाल का वर्णन करता है। उस समय प्राणाधार प्रजा की उत्पत्ति का समय नहीं। दूसरे मनु की संख्या से अंगिरा तीसरा और मन्त्र की संख्या से चौथा होने से ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र नहीं रहा। ज्येष्ठ का प्रथम उल्लेख करना असभ्यता है। प्राचीन आचार्य्यों ने इन मरीचि आदि दस संज्ञा वालों को देहधारी विशेष नहीं माना। इनको गुण विशेषों से वायु माना है वायु की ४६ संख्या ऋषिवरों ने मानी है। उनमें से सूक्ष्मतर, सूक्ष्म और स्थूल ये तीन कक्षा बांधी हैं। सूक्ष्मतर वायुओं की ऋषि संज्ञा है और सूक्ष्मों की पितर एवम् स्थूलों की असुर संज्ञा

आंधी। वायु की इन तीन संज्ञाओं से सृष्टि में अनेक कार्य्य हो रहे हैं। प्रथम तो मनु स्वयं ही इन ऋषियों से पितरों की और पितरों से आगे अन्य सृष्टि की रचना मानता है। द्वितीय भारत के अद्वितीय वेदवेत्ता, हमारे मन्तव्य से परम पवित्रात्मा, मोक्ष से आकर धर्म की सर्व प्रकार मर्यादा बांधने वाले और आपके मन्तव्य तथा विश्वासानुकूल साक्षात् ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र योगिराज इनको देह धारी व्यक्ति विशेष न मानते हुए वायु ही मानते हैं। गीता में स्पष्ट कहा है कि ( मरीचिर्मरुतामस्मि ) मरुतों में मरीचि हूं। इस प्रमाण के समक्ष ये दस आपके बताये ब्रह्मा के औरसपुत्र पञ्च भौतिक शरीर वाले कपूर हुये जाते हैं। दौड़ो पकड़ो, आपके लेख के बहुत से शब्द "वदतो व्याघात" -दोष से युक्त हैं। आगे आप स्वयं ही कहते हैं कि इस अथर्व का रहस्य जानने वाला ब्रह्मा का आठवां पुत्र वसिष्ठ हुआ है। पूर्व के सातों को मर्म विदित नहीं हुआ। मन्त्र में तो अंगिरा के अतिरिक्त वसिष्ठ के अथर्ववेद पढ़ाने का वर्णन भी नहीं आया। इससे उपनिषद् व्यक्ति विशेषों का ग्रहण करती है जो समय पर उपर्युक्त नाम वाले हुए हैं। आप का मत इन मन्त्रों से पुष्ट नहीं होता। आप सत्वगुण का आश्रय लेकर विचार कीजिये, स्वयं स्पष्ट हो जायगा। अथर्व का ब्राह्मण गोपथ स्वयं ही भृगु शब्द से ( वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः ) वायु, जल और चन्द्रमा को भृगु कहता है। आपने वेद का बहुत अनुशीलन किया है। कृपया यह तो विचारिये कि वेद संज्ञाओं का वर्णन कर्त्ता है या संज्ञियों का। महाशय! वेद में संज्ञाओं का वर्णन है संज्ञियों का नहीं। संज्ञियों का वर्णन करने से वेद के अनादित्व का पलायन होता है। किसी व्यक्ति विशेष का वर्णन वेद नहीं करते। वेदों का रहस्य जानने वाले ऋषिवरों का यही सिद्धान्त है। आपको भी ऐसी ही व्यवस्था करनी चाहिये। वेदों के लिये आप

का यह कथन कि "अर्द्धभाग अथर्व का कहा है और दूसरा आधा अंगिरा का" किसी प्रकार अङ्गीकार करने योग्य नहीं। वेद तो ईश्वरीय ज्ञान माना गया है आपके बनाये शब्द कहने से तो यह प्रत्यक्ष विदित होता है कि आप वेदों को ऋषियों का बनाया मानते हैं। इस कथन को करते हुए विचार को नितान्त ही रसातल पहुंचा बैठे। इसका तात्पर्य्य यह है कि अर्द्ध के लगभग तो भृगु का वर्णन है और आधे भाग में आयु का वर्णन विशेष है। आपका कथन भी आपके विचारों में सन्देह उत्पन्न करता है कि कोई २ इस वेद को हिंसा न होने से अथर्व कहते हैं। क्या आप वेदों में हिंसा भी मानते हैं? वस्तुतः इस वेद का अथर्वा नाम इस कारण रक्खा गया है कि थर्व धातु चलने अर्थ में है। जो ज्ञान कभी अपने स्वरूप का परिवर्तन न कर सर्वदा निश्चल रहे उसको अथर्व कहते हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो और तीन वेदों के नाम गौण हैं। यह अथर्व नाम गौण नहीं। वेद ज्ञान की जो सत्यता है उसी से इसका नाम अथर्ववेद पड़ा है। इसका दूसरा नाम ब्रह्मवेद भी है। आपके सूक्तों के नाम धरने से विदित होता है कि आपने मन्त्रों को अनेक सूक्तों में काट छांट कर अपनी इच्छानुकूल कल्पना किये हैं। इस बात का पता तब लगेगा जब कि वह आयेंगे। आपके इतने प्रकरण में इतने ही विषय विचारणीय थे शेष इसी के अन्तर्गत हैं। उनका विचार भी हमारे लेख में आगया है। सज्जन ध्यान पूर्वक विचारेंगे तो केवल अथर्ववेदालोचन का उत्तर ही नहीं मिलेगा और भी अपूर्व विचार हस्तगत होंगे। यह इतना वर्णन पृष्ठ पांच पर्य्यन्त है आगे ग्रन्थकर्त्ता के दूसरे कथन पर विचार होगा।

[ उक्तिः ]

वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है ॥ सत्य के ग्रहण और असत्य

के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ॥ २ ॥ सब काम सत्यासत्य को विचार करने चाहियें ॥ ३ ॥

सार्वजनिक इन तीन नियमों के आधार पर भारतवर्ष का प्रत्येक विद्वान् अपने सिद्धान्त को स्थिर कर सकता है। विद्वान् को किसी का पक्षपात नहीं करना चाहिये। वेदों का विचार करना चाहिये। और वेद प्रतिपादितधर्म का ही निःशङ्क हो कर प्रचार करना चाहिये।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्त्ता का पूर्वोक्त लेख जो उन्होंने तीन नियमों को लेकर दिया हमें सोलहों आने मन्तव्य है। इसमें वक्तव्य विशेष की आवश्यकता नहीं। केवल इतना कहे देते हैं कि इस प्रकार के लेख दूसरों को बांधने के अर्थ ही लिखे गये हैं। स्वयं ग्रन्थकर्त्ता का आचरण उन पर होता हुआ ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। स्वकथन के विपरीत व्यवहार कथन को असत्य कर देता है। यह वाचकवृन्द को आगे चलकर विदित हो जायगा।

## [ उक्तिः ]

आजकल समाज में कुछ ऐसे भी पुरुष हैं जो अपनी बुद्धि में मन्दता के कारण न आये हुये किसी गम्भीर विषय को प्रक्षिप्त अथवा गप्प कह कर टाल देते हैं परन्तु यह बात औचित्य विचार से बहुत दूर है। जिन पुरुषों ने वंश परंपरा से भी वेद नहीं देखे वे यदि गम्भीर वैदिक विषयों का सर्वसाधारण के समक्ष उपहास करें तो विद्वान् इस अनधिकार चेष्टा का कहां तक सहन कर सकते हैं। इस लिये अब हम यहां पर कुछ ऐसी बातें बतलाना चाहते हैं जिनका वेदों में वारम्वार वर्णन आता है और बाबू पार्टी के नास्तिक समाजी जिनको मानने के लिये तयार नहीं है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

इस लेख से यह विदित होता है कि ग्रन्थकर्त्ता ऐतिहासिक विचार से यह लेख नहीं लिख रहे, किन्हीं व्यक्ति विशेषों की ओर कटाक्ष है। ऐतिहासिक विषय यह सिद्ध कर रहा है कि ऐसे पुरुष सर्वदा सब समुदायों में और सर्व कालों में होते आये हैं। कुछ आजदिन परही यह लांछन नहीं दिया जा सकता। और साथ में ही यह कहना कि बुद्धि की मन्दता के कारण गम्भीर विषयों को गप्प वा प्रक्षिप्त बताते हैं सो वेद को मानने वाले को वेद के विषय में ऐसा कहना अनुचित है। हां साथ ही में यह बात कही जायगी कि इसमें कुछ दोष वक्ता को भी है। कहा भी है ( वक्तुरेवहि तज्जाड्यं यत्र श्रोता न बुध्यते ) वक्ता को अपना वक्तव्य इतना स्पष्ट करना योग्य है कि जिससे सुनने वाला मन्द से मन्द बुद्धि वाला भी समझ ले। यह तो आपको भी स्वीकार है कि उनके वंशपरंपरा से वेदों का अध्ययन नहीं हुआ। (हमारे अनुभव से यह विदित होता है कि द्वापर के पश्चात् केवल वेदों का अध्ययन उन वंशो में भी नहीं हुआ जिनके वेद सवस्व रहे हैं, इतरजनों का तो कहना ही क्या है) यह दूसरी बात है कि किसी संस्कृत के विद्वान् ने आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण का कोई स्थल देख लिया हो। परन्तु मन्त्रभाग के किसी मन्त्र के बिना भाष्य देखे अर्थ करने की गति दुस्तर थी। इतने अंश में तो स्वामी दयानन्द के हम ऋणी ही रहेंगे। चाहे और उपकार उनके हम मानें वा न मानें यह हमारी कृतज्ञता के आधीन है। जिन पुरुषों को आप आर्य्यसमाज में होने से यह लांछन देते हैं कि वेदों में कहे विषयों को नहीं मानते, नास्तिक हैं; यह दोष प्रथम तो सब पर नहीं घट सकता, कारण कि सब में सब प्रकार के पुरुष होते हैं। यदि यह दोष किन्हीं पुरुषों में है तो वह दोष उन

व्यक्तियों का नहीं, यह दोष केवल पाश्चात्य विद्याध्ययन का है। इस विद्या का पठन पाठन करनेवाले प्रायः सभी समाजों में बाहुल्येन होंगे। इसी प्रकार के ग्रन्थकर्ता के कथन पक्षयुक्त माने जाते हैं। यदि ग्रन्थकर्ता अपने लेख में यह लिखते हैं कि आजदिन पाश्चात्यविद्वानों की शिक्षा पाये हुए कुछ पुरुष भारत में ऐसे हैं तो ठीक होता, आपने तो समाज ही पर यह आक्षेप लगाया, यह द्वेष है। द्वेष विद्वानों को शोभा नहीं देता। इसमें विशेष दोष ग्रन्थकर्ता का ही प्रतीत होता है। आपकी कथनशैली इस प्रकार को लिये हुए है कि नास्तिक तो नास्तिक आस्तिकों को भी सन्देह में डालती है। इसका पता आगे के कथन में लगेगा।

## [ उक्तिः ]

पहिली बात उनमें स्वर्गलोक का वर्णन है। ( सहस्राश्वीने इतः स्वर्गो लोकः ) ७।७। ऐतरेय ब्राह्मण के इस प्रमाण से इस भूलोक से एक सहस्र आश्वीन भुवर्लोक के अन्तर स्वर्गलोक विद्यमान है। इस बात को सभी आचार्य्य मानते हैं। और भूर्भुवः स्वः इन तीनों लोकों का अनेक ग्रंथों में वर्णन है। इन को ही त्रिविष्टप, त्रिदिव, नाक, देवलोक आदि नामों से विद्वान् कहते हैं। (अश्वस्यैकाहगमः) ५।२।१९ इस पाणिनीय सूत्र के आधार पर एक जवान तगड़ा घोड़ा एक दिन में जितने मार्ग को तय करले उतने को एक आश्वीन कहते हैं। इसी प्रकारके १ सहस्र आश्वीन यहांसे स्वर्ग है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

वेदों की उन बहुत सी वार्ताओं में जिन पर नास्तिकों को विश्वास करते नहीं बताते, पहिली बात यह स्वर्ग की है। जिसमें एक प्रमाण ऐतरेय ब्राह्मण का है और आश्वीन का मान निश्चित

करने के अर्थ पाणिनीय सूत्र का प्रमाण है। इस लेख में नास्तिक तो व्याज मात्र हैं, मुख्य कटाक्ष ग्रन्थकर्ता का यह है कि "स्वामी दयानन्द यतिवरने मनुष्य के सुख दुःख भोगने के अर्थ कोई स्थान विशेष नहीं माना।" उनका विचार तो इस लक्ष्य को लेकर है कि कर्मानुसार जो सुखदुःखादि जीवों को भोगने पड़ते हैं, वे सब पृथिवी पर ही भोगे जाते हैं। अन्य कोई ऐसा स्थान विशेष नहीं कि जहां जाकर मनुष्य सुखदुःखादि भोगे। कारण कि सुख दुःख दोनों परस्पर विरोधी हैं, सुख का भान दुःखों को देख कर और दुःखों का भान सुखों को देखकर होता है। लोक के व्यवहार में भी यह प्रमाण मिलता है। एक निपूती स्त्री सपूती को देखकर वा सुनकर अपने निपूती होने का कष्ट मान सकती है और जहां सभी अपुत्रिणी हों वहां किसी को क्या दुःख? नेत्रहीन पुरुष नेत्र वालों से रूपादि की प्रशंसा सुन अपनी नेत्रहीनता का दुःख माने, ऐसा सम्भव है। और जहां सबही नेत्रहीन हों वहां क्या दुःख होगा? इस व्यवस्था को जो सर्वथा मानने योग्य है और इसी को सदा से विद्वान् मानते आये हैं, लक्ष्यमें धर यतिवर स्वामीदयानन्द का कथन है। जिन भूर्भुव स्वः लोकों का वर्णन ग्रन्थों में है और वे पृथिवी से लेकर द्युलोक पर्य्यन्त की कक्षा मानी गई हैं उनके विषय में यतिवर का कथन नहीं है। प्रथम तो ग्रन्थकर्ता को वक्ता का आशय समझ कर कहना था, यदि आशय को न समझकर ही कहना इष्ट था तो अपना ही प्रमाण ऐसा देना था कि जिससे अपनी इष्ट सिद्धि होती। परन्तु ऐसा नहीं किया गया। अब हम ग्रन्थकर्ता के स्वर्ग की खोज करते हैं। देखिये क्या रहस्य वाचकवृन्द के हस्तगत होगा। ग्रन्थकर्ता ने केवल इतना ही बताया है कि भूमण्डल से एक सहस्र आश्वीन प्रमाण स्वर्गलोक है परन्तु यह नहीं बताया कि मृत्यु के पश्चात जीव वहां जाते हैं या क्या होता है मान

लिया हमने, वह भी अन्तरिक्ष की एक कक्षा विशेष है इतना मान लेने मात्र से क्या फल ? यों तो इस पृथिवी पर एक की अपेक्षा दूसरा देश शुद्ध है, जैसे हमारे रहने के स्थानों की अपेक्षा शिमला नैनीताल मंसूरी और आगे चल कर हिमालय का बदरिकाश्रम बड़े २ उत्तम स्थान हैं। परन्तु इस कथन से फल नहीं प्रतीत होता जब तक कि हम इन देशों के गुणविशेष और लाभ प्रकट न करें। आपने स्वर्गलोक की दूरी बताकर यह नहीं बताया कि वहां क्या २ होता है। यह हम नहीं कहते कि ऐतरेय का कथन असत्य है। न जाने किस विषय को लक्ष्य में धर यह कहा गया है। ऐतरेय ग्रन्थकर्ता का यह आशय प्रकट नहीं होता जो आप करना चाहते हैं। कारण कि मान बताने की आवश्यकता उसे होती है जो स्वयं किसी स्थान पर जाने की इच्छा करे वा किसी यानादि द्वारा जाय। आपके बताये स्वर्ग में यदि हम मनुष्यों का जाना मान भी लें तो यह मान उनके किस कार्य्य का ? रथ घोड़े हाथी पर नहीं जाते, अपने पैरों से नहीं जाते। मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीय व्यवस्था से न जाने किस प्रकार जाते होंगे। जब उनके जाने का मार्ग वा यान हमें विदित नहीं तो उनके अर्थ मार्ग का प्रमाण बताना कैसा ? मार्ग बताने वाले को यात्राके अर्थ मार्गकी सभी अड़चनें निपटानी पड़ती हैं। जैसे कोई कहे कि भाई अमुकस्थानपर जाओ तो अमुक दिशाको और अमुक २ स्थान मार्ग में आयेंगे। आपके ऐतरेय के प्रमाण में जाने की दिशा और मार्ग में आने वाले अन्य लोकों का वर्णन नहीं है। यदि कोई धनी वहां जानेका साहस करे तो किस यान से और किस दिशाको जाय ? यदि कहो कि यहां के जीव वहां नहीं जा सकते तो उन के लिये मान बताना भी व्यर्थ है। इत्यादि हेतुओं से यह विदित नहीं होता कि ऐतरेयमें स्वर्गका मान इस लक्ष्यको लेकर बताया गया हो जो अर्थ आप लेते हैं। वहां कुछ और ही आशय होगा।

सावधानी से पुनः अवलोकन करो। शीघ्रता में देख गये हो। यह मान ठीक नहीं है, एक अनुमानिक मान है। एक घोड़ा एक दिन में जितना मार्ग चल सके उतने को एक आश्वीन कहते हैं। प्रथम तो घोड़े के चलने का प्रमाण नहीं। आपने एक तगड़ा घोड़ा लिखा है। घोड़े का तगड़ापन और है और चाल और है। बहुत से बलवान् घोड़े भी चलने में मट्ठे होते हैं, बहुत से दुबले पतले चलने में अच्छे होते हैं। फिर यह भाव नहीं खुलता कि ऐतरेय ब्राह्मण एक सहस्र आश्वीन क्रोश मानता है वा योजन मानता है। क्रोश और योजन में १—और ४—का अन्तर है इत्यादि बहुत से दोष आने से ऐतरेय का कथन आपके कथन की पुष्टि नहीं करता। लोक के और विद्वानों का मन्तव्य देखने से भी यह पता नहीं चलता। अन्य विद्वानों ने मोक्ष मार्ग के अतिरिक्त और स्वर्गादि को नहीं माना। अन्य ऋषि मुनियों का मत देखने से विदित होता है कि वे भी इसी लोक को स्वर्ग नरक मानते हैं। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज योगमार्ग से मोक्ष को मानते हैं। और यह भी बताते हैं कि यदि योग किन्हीं कारणों से भ्रष्ट भी हो जाय तो मृत्यु होने पीछे वे जीव (शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते) इसी लोक में विद्वानों और धनियों के गृहों में जन्म लेंगे। आपके माने स्वर्ग में जाने का वर्णन नहीं। बात भी ठीक है दीर्घदर्शी बुद्धि में न आने वाली बात को मान भी कैसे सकते हैं। यदि इस जन्म के किये पुण्य पापों के भोगने के स्थान अन्यत्र होते तो यहां सुखों तथा दुःखों के भोगने से क्या प्रयोजन था। यह तो यवनमत के दोज़ख़ और बहिश्त हो गये। रही यह बात कि कोशों में इन देशों का नाम त्रिविष्टप आदि हैं। द्युलोक में प्रकाशमान नक्षत्रों को देवनाम से कहा गया है। इससे उनको देव शब्द से ग्रहण कर उन लोकों की ये संज्ञा बांधी गई हैं। इसमें श्रुतिप्रमाण

है। ( वातो देवता चन्द्रमा देवता ) ये सब देवता हैं। इनका निरन्तर वास होने से ही उन स्थानों का नाम कोशों में त्रिविष्टपादि रक्खा गया है। आप जैसे पुण्यात्माओं के जाने से नहीं। आप चाहे जितना बल लगायें, यतिवर का सिद्ध पक्ष आप से कट नहीं सक्ता। यूं तो स्वर्ग का अर्थ सुख विशेष है। द्युलोक में पार्थिवरज के परमाणुओं का समावेश न्यूनता और शुद्धता से होने पर वहां रोगादि का होना न्यूनता से हो। परन्तु यह मान कर उन स्थानों को स्वर्ग मानना कि वहां पुण्यात्मा जीव जाकर कुछ काल रहते हैं बुद्धि में आना कठिन है। यदि यह कहो कि वहां दुःख नहीं? इस बात को पुराण सिद्ध करते हैं कि वहां इसी लोक के समान दुःख हैं। पुराणों में स्वर्ग और मोक्ष की तुलना करते हुए काल्पनिक स्वर्ग के सुख वर्णन करे हैं। सुखों के कहने के पश्चात् यह प्रश्न हुआ कि वहां कोई दुःख भी है तो बताया गया कि पुण्य फल समाप्ति का दिन नित्य मन में खटकता रहता है। इस पर कहा कि जहां यह दुःख है उसकी नाक संज्ञा नहीं बनती। इससे काल्पनिक स्वर्ग हेय है। मोक्ष ही एक मार्ग है। यतिवर का पक्ष सिद्ध है। यतिवर के पक्ष की पुष्टि आपके ग्रन्थ तथा विद्वान् सभी करते हैं। और आपके कथन की पुष्टि आपके मत के ग्रन्थ तथा विद्वान् भी नहीं करते. इससे विचारशीलों के सन्तोषार्थ आपका कथन नहीं। सत्य कहो, शत्रु भी मानेंगे क्रोध में वा पक्ष को लेकर मत कहो। यह विद्वानों की शोभा नहीं।

## [ उक्तिः ]

वर्तमान समय में बहुत से यान आकाश में उड़ते २ इतनी दूर चले जाते हैं कि जिनको मनुष्य दूरबीन से भी नहीं देख सकता है। परन्तु प्राचीनकाल के कई राजा कई लोकों का परिभ्रमण कर फिर

विमानों द्वारा भूलोक में आते थे ऐसा प्राचीन इतिहास कह रहा है। ( पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमंतरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ) इस मन्त्र में एक मनुष्य का तीनों लोकों में जाना निर्विवाद मिलता है। मन्त्र का अर्थ यह है कि मैं पृथिवी से अन्तरिक्ष पर चढ़ गया अन्तरिक्ष से द्युलोक पर चढ़ गया। द्युलोकसे स्वर्ग को चला गया।

## [ प्रत्युक्तिः ]

आपका यह कहना है कि वर्तमान में वायुयान इतनी दूर चले जाते हैं कि जिनको दूरबीन से भी नहीं देख सकते, क्या सिद्ध करता है? क्या कहीं श्रीस्वामी दयानन्द ने आकाश को ठोस बताया है जिसके पोलपन को आप विमानों के दूर तक चले जानेसे हटाते हैं आकाश तो शून्य का अवकाश देने वाले का नाम है हो (निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्—वैशेपिक ) उसमें वायुयानों को दूर जाने से कौन रोकता है। क्या आपको यह वायुयानों के दूर जाने ही से विदित हुआ कि ऊपर केवल रिक्तता ही प्रतीत होती है। यह बात तो पक्षियों का आकाश में बहुत दूर चला जाना चिरकाल से सिद्ध कर रहा है। और जो यह आपने कहा कि प्राचीन कालके राजा कई लोकों का भ्रमण कर विमानों द्वारा फिर यहां आते थे जैसे आज दिन के वायुयान लौटकर अपने स्थान पर आ जाते हैं। ऐसे ही उन राजों के विमान भी लौट कर आ जाते थे। भेद केवल इतना रहा कि अभी वर्तमान काल के विमानों में उतनी शक्ति नहीं दी गई यदि इनके साधन भी पूर्ण हो गये तो ये भी जहां तक जाते हैं उससे अधिक दूर चले जाया करेंगे ईश्वर ने चाहा तो आप के बताये लोकों को भी ये यान देख आयेंगे। आपके इस प्रमाण में आनन्द तो पूर्ण तब आता जब कि आप

किसी वायुयान वाले से मिल कर एक चिट्ठी इस विषय की साक्षी के लिये लिखा लेते और उसको भी इस इतिहास के साथ छाप देते तबतो यह इतिहास आपका सोने में सुहागा हो जाता, किसी को कान फटकने का भी अवकाश न मिलता। जिस पार्टी पर आपका कोप है वह तो पाश्चात्य विद्वानों का शिष्य वर्ग है, चाहे स्वामी दयानन्द यतिवर के कहने में विश्वास को अवकाश देना कठिन हो परन्तु पाश्चात्य विद्वानों का कहना अटल मानते हैं। ग्रन्थ कर्ता ने बड़ा धोखा खाया, यदि आप हम से इस विषय की सम्मति लेते तो हम तो यही सम्मति देते कि किसी वायुयान वाले महाशय से एक लेख लिखवा लो उसका विषय यह हो कि - अमुक दिन मेरा वायुयान उड़ते २ वहां चला गया। (स्वर्ग और पितर लोक के लक्षण आपने पुराणों से दे दिये होते) मैंने ऐसे अद्भुत नगर और वहां रहने वाले नर नारी देखे इत्यादि। महाशय बहुत चूके अब पछतायें क्या बने चिड़िया चुग गईं खेत। वादी को पछाड़ने के लिये बुद्धि की आवश्यकता है (अपमानं पुरस्कृत्य) इस प्रकार कार्य्य सिद्ध करें। क्या पञ्चतन्त्र भूल गये। आगे को याद रखिये। जिस मन्त्र के आधार पर आपने यह गाथा गढ़ी है वह मन्त्र भी आपको साक्षी देने को कटिबद्ध है। आपका इतिहास विषय में दिया मन्त्र अथर्व के चौथे काण्ड के तृतीय अनुवाक का चौदहवें सूक्त का तीसरा मन्त्र है। श्री सायणाचार्य्य महाशय तो इस मन्त्र का अभिप्राय बताते हैं कि ( वाजपेये पृष्ठात् पृथिव्या इत्येतां यूपमारुह्य यजमानो जपेत् ) वाजपेय यज्ञ में यज्ञ स्तम्भ पर चढ़ कर यजमान इस मन्त्र का जप करे। और ग्रंथ कार कहते हैं कि ऐसा एक व्यक्ति विशेष राजा ने स्वर्गादि लोकों से आकर कहा है। गुरु चेलों में कौन सच्चा किस की माने? विरुद्ध कथन करने वालों में एक अवश्य मिथ्यावादी होगा।

ग्रंथकर्ता का कथन ही बनावटी प्रतीत होता है। कारण कि दोनों वैयाकरण हैं, ग्रंथकर्ता तो—"आरुहम्" शब्द को भूतकाल की क्रिया मान कर अर्थ करते हैं कि मैं चढ़ा, इन्होंने तो केवल इतने मात्र ही से यह जाना कि इस क्रिया को कोई वैयाकरण अन्यथा करने को समर्थ नहीं। इससे इसके साथ किसी पुरुष का कहीं जाना कल्पना करके अपना अर्थ सिद्ध करो, पीछे पोल खुलेगी तो देखा जायगा। थोड़े कालको आंख मीच के बात करलेंगे। श्रीसायणाचार्य्य महाशय—"आरुहम्" के अर्थ करते हैं 'आरोहामि' वर्तमान काल, कारण कि सायणाचार्य को यह विदित था कि वेदों में भूत भविष्य वर्तमानादि कालों की व्यवस्था बांधना अज्ञान है। पाणिनि आचार्य्य ने वेदों के लिये यह नियम इस सूत्रसे कर दिया है (छन्दसि लुङ्लङ्लिटः) वेदमें ये लकार सब कालों में आते हैं। ग्रन्थकर्त्ता ने इस पर ध्यान न देकर अपना अर्थ सिद्ध किया परन्तु पासा पूरा न पड़ा, फेंकना चाहा था पौबारह और पड़गये तीन काणे, छक्के बंधे ही रह गये। वस्तुतः मन्त्र में दोनों बातों में से एक भी नहीं। मन्त्र एक अनूठे ढंग से सार भरा उपदेश देता है। मन्त्र बताता है कि मनुष्यो! तुम यह मत समझो कि हमारा यह पाञ्चभौतिक परिमित शरीर केवल पृथिवी मात्र ही के सुखों को भोगता है, मैंने तुममें बुद्धि का इतना बल विशेष दिया है कि तुम पृथिवी से द्युलोक पर्य्यन्त जा सकते हो। देखो विचारो जैसे पृथिवी पर रहने वाले पक्षिगण अपने बल से आकाश में जाते हैं तुम इनकी रचनाविशेष को देख कर ऐसे यान बनाओ जिससे कि तुम अन्तरिक्ष में सुखपूर्वक पहुँच सको। जब तुम्हारे यान पृथिवी से अन्तरिक्ष पर्य्यन्त पहुँचने लगें तो फिर यह विचारो कि अब आगे को किस शक्ति विशेष के लगाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार बुद्धिबल से अपने बनाये यानों द्वारा द्युलोक

पर्य्यन्त पहुँच सकते हो। न तो मन्त्र में किसी आने वाले का वर्णन है और न यज्ञ स्तम्भ पर चढ़ने से कार्य सिद्धि होती है। मन्त्र में तो एक मार्मिक उपदेश दिया गया है। सुनते हैं कि वर्त्तमान समय में बने वायुयान भी नितान्त पक्षियों की आकृति के बनाये गये हैं। ग्रन्थकर्त्ता ने जिस राजा का यह इतिहास बताकर यह मन्त्र प्रमाण दिया है उस राजा की बुद्धिमत्ता तो प्रकट होती नहीं, कारण कि मूढ़ से मूढ़ मनुष्य भी यदि कहीं जाय तो आकर वहाँ का कुछ वर्णन अवश्य करेगा। वर्तमान समय के बुद्धिमान् जहां जाते हैं वहां का वृत्तान्त अन्यों के ज्ञानार्थ अवश्य प्रकट करते हैं। देखो अमरीकापथप्रदर्शक, जापानदर्पण आदि परन्तु ग्रन्थकर्ता के काल्पनिक महाराजाधिराज ने केवल इतना तो कहा कि वहां २ गया, वहां का वृत्त कुछ नहीं कहा, नहीं तो योग्य था कि जैसे एक मन्त्र द्वारा भ्रमण से लौटना कहा था दूसरे में थोड़ा वृत्त भी देते। पूरी बात न कहना उन्मादी का लक्षण है। ग्रन्थकर्ता का यह परिश्रम भी निष्फल ही रहा। सज्जन ध्यान पूर्वक देखें।

[ उक्तिः ]

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीयाहप्रद्यौरिति यस्यां पितरआसते॥ १८-२-४८

इस मन्त्र में द्युलोक की तीन कक्षा वर्णित हैं। उनमें पहिली कक्षा का नाम उदन्वती है। दूसरी का पीलुमती है। तीसरी का प्रद्यौ है जिसमें पितर रहते हैं। इन तीन कक्षाओं का ही नामान्तर नाक स्वर्ग और पितृलोक है। उदन्वती कक्षा में चन्द्रमा है। पीलुमती में सूर्य्य है, तीसरी कक्षा में और अनेक लोक लोकान्तर हैं, इन लोकों में जाना ही अश्वमेधादि बड़े

बड़े यज्ञों का अदृश्य फल है । सामान्यजन इन लोकों में नहीं जा सकते । स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में अधिक सुख का प्राप्त करनाही स्वर्ग माना है, अब कहिये किसकी बात मानी जावे । विद्वानों को इसपर विचार करना चाहिये और वेद के द्वारा निश्चित हुए विषय को मानना चाहिये । इस विषय का अधिक वर्णन इस ग्रन्थ के मन्त्र भाग में पाठकों को मिलेगा ।

## [ प्रत्युक्तिः ]

क्या इन मन्त्रोक्त तीन कक्षाओं का यतिवर स्वामीदयानन्द ने खण्डन किया है । वेद के कथन में न्यूनाधिकता व किसी लेख विशेष को अन्यथा बताना आस्तिक कोटि के पुरुषों से होना असम्भव है । वेद में जो कुछ कथन है वह सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेश है वेद में वैशेषिक के इस वाक्यानुसार ( बुद्धिपूर्वा वाक्कृतिर्वेदे ) जो कुछ कहा गया है सब ठीक है । केवल भेद इतना है कि वेदार्थ के जानने के अर्थ भाव की शुद्धि की आवश्यकता है । वेदविज्ञों की इसमें साक्षी है । ( न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ) यदि आप यतिवर स्वामी दयानन्द के स्वच्छभाव को अच्छी प्रकार जान लेते तो ऐसा लेख लिखने का साहस न करते । यतिवर स्वामी दयानन्द वेद के सब ही बातों से सहमत हैं इस विषय में उनका यह नियम ( वेद सत्यविद्याओं का भण्डार है ) साक्ष्य दे रहा है । जो २ विषय वेदों में है वे सर्व सत्य ही हैं । वेद मानवी प्रजा के अर्थ उपदेश हैं उपदेश सर्वदा हितकारी होता है । स्वार्थी उपदेष्टा का उपदेश उपदेश संज्ञा वाला ही नहीं । वेद कल्याणी वाणी वाला कहा गया है । कल्याणी वाणी में हितकारी उपदेश होता है । आप का यह मन्त्र जिसमें अन्तरिक्ष की तीन कक्षाओं का वर्णन है, आपके क्षुद्रभावों का पोषक नहीं

एक उच्चकोटि के ज्ञान को बताता है। मन्त्र कहता है कि अन्तरिक्ष की पहिली कक्षा ( उदन्वती ) स्थूल जल वाली है। मेघ मण्डल का समूह तथा वर्षा का होना इसी कक्षा से सम्बन्ध रखता है। द्वितीय कक्षा नक्षत्रों तथा अन्य प्रकाशवान् लोक लोकान्तरों की है। तृतीय कक्षा पितरों की है। इसके विषय में हम पूर्व ही बता चुके हैं कि पितर संज्ञा वायु विशेषों की है। ये वे पितर नहीं जिनकी ओर आप का लक्ष्य है। मर कर जो जीव पितर बनने का आपका मन्तव्य है वह भारत के उच्चकक्षा के ज्ञान वाले विद्वानों का नहीं। उच्चकक्षा के विद्वानों में श्री कृष्णचन्द्र योगिराज के अतिरिक्त सम्प्रति कोई अधिक प्रतीत नहीं होता, उनका इस विषय में यह विचार है कि जीव सब जन्म मरण वाले हैं ( जातस्य हिध्रुवंमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच ) जिसका जन्म होता है वही मरता है और मृत्यु के पश्चात् जन्म अवश्य होता। मोक्षकी प्राप्ति के पश्चात् तो मोक्ष की नियतावधि पर्यन्त कुछ कालको शीघ्र २ जन्म न लेना होताहै। इसके अतिरिक्त जीव संज्ञा वाले को जन्म मरण का चक्कर लगा रहता है। इस विषय में भी उक्त योगिराज जी का मत है कि। ( वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ) भाव इसका स्पष्ट है। इत्यादि प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध है कि जीव कभी जन्म मरण से रिक्त नहीं रहता। वेद में जिन पितरों का वर्णन है वे जीव संज्ञा वाले नहीं कारण कि वेद तो सृष्टि रचना के ाल का वर्णन करता है तब तो मनुष्यों की सृष्टि रचना का आरंभ भी नहीं था। आपके कथनानुसार तो यह विदित होता है कि पितरलोक बहुत काल पर्यन्त पितरों से रिक्त ही रहा, कारण कि आपका सिद्धान्त यह है कि मरने के पश्चात् यह जीव पितर होता है और पितर कोई है ही नहीं।

यदि हम आपके पुराणों की मानी एक लक्ष वर्ष की कृतयुगीय आयु को आपके सन्तोष के लिये थोड़े काल को मान भी लें तो यह सिद्ध होगा कि कृतयुग में सृष्टि उत्पत्ति से एक लक्ष वर्ष पर्य्यन्त किसी का मृत्यु नहीं हुआ, मृत्यु न होने से पितर भी नहीं बने, अतएव सृष्टि आरम्भ से एक लक्ष वर्ष पर्य्यन्त पितरलोक पितरों से रिक्त रहा। परन्तु वेद की श्रुति आदि काल से उसे पितर लोक कहती है। इससे यह मानना पड़ता है कि ये पितर संज्ञा वाले वायु विशेष हैं जो ऋषि संज्ञा वाले वायुओं की दूसरी कक्षा है, आपके माने पितर नहीं। स्वामीदयानन्द यतिवर वेद के इन्हीं विषय को सत्य मानते थे। और अन्यों की स्थूलविचारता दूर कर वेद का रहस्य मनवाने के अर्थ धरातल पर उनका शुभागमन हुआ था। आपके कथनाकूल तो पितर लोक वर्तमान में भी शून्य ही प्रतीत होता है। कारण कि आप लिखते हैं कि उक्त तीनों लोकों की प्राप्ति अश्वमेधादि यज्ञ करनेवालों को होती है, सब को नहीं। प्रथम तो सर्व अश्वमेधादि करते नहीं, जो अश्वमेधादि नहीं करते वे तो आपके मतानुसार वहां पहुँचही नहीं सकते। जिन्होंने अश्वमेधादि किये हैं उनकी साक्ष्य पुराण कलियुग का तो देते नहीं इससे पूर्व ही किसी युग में हुए होंगे। वे व्यक्तियां भी स्वर्ग छोड़ गई होंगी ऐसा विदित होता है। इत्यादि आपके कथनानुसार भी स्वर्ग रिक्त ही है। आपका अर्थ इससे भी सिद्ध नहीं हुआ चलो सन्तोष करो सभी व्यापारों में लाभ नहीं होता कहीं आगे अर्थ सिद्धि होगी इसमें टोटाही सही।

## [ उक्तिः ]

दूसरी बात पितृलोक के संवन्ध में है। द्युलोक की प्रद्युनामक जो कक्षा है उसमें पितर निवास करते हैं। ऐसा गत प्रकरण में कहा गया है। ( मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः। तेषा-

ऋषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ) ऐसा मनुस्मृति में लिखा है। द्यूलोक की प्रद्यु नामक कक्षा में वायु के अवलम्बन से जो रहते हैं, वैदिक परिभाषा में उनको ही पितर कहते हैं।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता के इतने लेख से हमारा मत पुष्ट होता है। पूर्व हम कह आये हैं कि ऋषि पितर असुर आदि संज्ञा वायुओं की हैं, सृष्टि के पालन में विशेष कार्य्यकर्ता वायु ही माना गया है। यथास्थान उसके नाम रक्खे गये हैं प्रद्यु नामक कक्षा में रहने वाले वायुओं की पितर संज्ञा है। इन पितर संज्ञक वायुओं में स्थिति प्रद्यु नामक कक्षा में सृष्टि रचना के आरम्भ से है और प्रलय पर्यन्त रहेगी। न इन पितरों से वैदिक मत के मर्मज्ञों को नकार है। ग्रन्थ कर्ता को सिद्ध तो यह करना था कि हमारे मृतपुरुष इन लोकों में मृत्यु के पश्चात् जाते हैं। यह सिद्ध न करते हुए दो एक शब्दों के हेर फेर से हमारा सिद्धान्त पुष्ट करते हैं। हमारा सिद्धान्त है कि ये वायु विशेष हैं, आप कहते हैं कि वायु के अवलम्ब से रहनेवाले। अवलम्ब शब्द से ही विशेष करके हमारे पक्ष को स्वीकार किया। फिर कहते हैं कि वैदिक परिभाषा में इनको पितर कहते हैं। हमारा सिद्धान्त है कि कार्य्यानुकूल उनकी पितर संज्ञा कर दी है। आप उसको वैदिक परिभाषा कह लें। परन्तु आपके मृत माता पिता ये पितर नहीं हैं। यह आप स्वयं स्वीकार करते हैं। इससे यतिवर का कथन जिस विषय पर है, सिद्ध ही रहा।

## [ उक्तिः ]

**प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः। १०-२०-११ मर्त्योयममृतत्वमेति। १८-४-३७**

मृताः पितृषु संभवंतु । १८।४।३६,

यमराज्ञः पितॄन् गच्छ । १८।२।४६ । अपरे पितरश्च ये ।
१८।३।७२

इन मन्त्रों में हमारे वर्तमान जो पितर हैं उनका ग्रहण नहीं है। किन्तु जो सृष्टि के आरम्भ में मरीचि आदि के पुत्र हुए उनका ग्रहण है। और गोत्र प्रवरादि संबंध से हमारे वही पूर्व पितर हैं। अग्नि में हुत पदार्थ वायु के द्वारा उनको प्राप्त होता है। उस लोक में जन्म मरण के अभाव से अमृतत्व स्वयं सिद्ध है। इन मन्त्रों का अर्थ यह है कि जहां पर हमारे पहिले पितर गये हुए हैं। हे मृतात्मन्! तुम भी उसी मार्ग से वहीं चले जाओ? यह मरणधर्मा मर्त्य अब अमृत को प्राप्त होता है। २ मरे हुए हमारे पितर उन पितरों में जाकर रहें। ३ यमराज के यहां जो पितर हैं, उन में तुम जाकर मिलो। ४ इन मन्त्रों से पितृलोक और इन पितरों से भिन्न पितर भी सिद्ध होते हैं।

## [ प्रत्युक्तिः ]

इतने लेखका उत्तर देना आवश्यक प्रतीत नहीं होता कारण कि ग्रंथकर्ता स्वयं ही स्वीकार करते हैं कि ये वे पितर नहीं, ये तो सृष्टि आरम्भ में ऋषियों की दूसरी संज्ञा वाले पितर हैं। जब ग्रन्थकर्ता स्वयं अपने लेख से हमारे मत को पुष्ट करता है फिर हम क्यों वृथा लेख बढ़ाकर कष्ट उठायें। रही यह बात कि ये चार मन्त्र जो आपने दिये हैं उनका क्या तात्पर्य है। प्रथम तो मन्त्र स्थल विशेष के हैं सबको एक स्थान पर रख कर अपना स्वार्थ सिद्ध किया गया है। फिर अपने ही कथन से खण्डन कर दिया। ग्रन्थकर्ता की प्रतिज्ञानुसार ये मन्त्र मन्त्रभाग में आयेंगे

वहीं इनके अर्थ करेंगे यहां अर्थ करना लेख बढ़ाना है। परन्तु यह तो ग्रन्थकर्ता भी कहते हैं कि ये वही पितर हैं जिन्हें स्वामी दयानन्द यतिवर मानते थे, यतिवर ने हवन के द्वारा वायुओं तथा जल की शुद्धि होना माना है। ग्रन्थकर्ता को यह स्वीकार है कि इन पितरों को जो कुछ प्राप्त होता है वह अग्नि में हवन करके वायु द्वारा पहुंचता है। यतिवर भी वायुओं की शुद्धि हवन ही से बताते हैं केवल शब्दों का हेर फेर है मानता आभ्यन्तर में ग्रन्थकर्त्ता भी इन्हें वायु ही है। वास्तव में ये पितर वायुही हैं भी यह सिद्धान्त अटल है।

## [उक्तिः]

सांगा स्वर्गे पितरो मादयध्वम्। १८-४-६४
यथावशं तन्वःकल्पयाति। १८-३-५९
गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि। १८-४-५२
संगच्छतां तन्वा सुवर्चाः। १८-२-१०

इन मन्त्रों में जो हमारे पितर मरते हैं। उनके लिये दुबारा अदृश्य शरीर भी प्राप्त होना लिखा है। मन्त्रों का अर्थ यह है कि हे पितरो तुम अंग सहित स्वर्ग में आनन्द करो। यथाशक्ति हम शरीर को कल्पित करते हैं। तुम्हारे शरीर को हम ब्रह्मज्ञान से कल्पित करते हैं। मृतात्मा सुन्दर तेज से युक्त होकर शरीरयुक्त हो। जिस पितृलोक का वर्णन किया गया है वह यमराज के अधिकार में है। इसीलिये ( यमो राजा अनुमन्यताम् ) १८-४-२६ ऐसा वेद में आता है। हवन के द्वारा जो पदार्थ पितृलोक में जाता है, वह यमराज के बिना अनुमोदन के पितरों को नहीं मिलता है। यमराज जब अनुमति देते हैं तभी उनको मिलता है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता ने अपनी उक्ति में चार मन्त्रों की प्रतीक देकर जो कुछ सिद्ध करना चाहा है वह उनके ही लेख से खण्डित होता है। कारण कि प्रथम तो जिन चार मन्त्रों की प्रतीक दी गई है वे भिन्न २ मन्त्रों की हैं समस्त मन्त्र देखने से उनका भेद प्रकाशित होगा। मन्त्रों का अर्थ यहां देनेसे आगे प्रकरण में पिष्टपेषण दोष होगा। ग्रन्थकार की प्रतिज्ञानुसार आगे ये मन्त्र आयेंगेही। वहीं इनका रहस्य दिखाया जायगा। इस स्थान पर तो ग्रन्थकर्ता के ही लेख से उनके अभिप्राय का सारांश दिखाते हैं। ग्रन्थकर्ता ने इतमे लेख में यह सिद्ध किया है कि हम जिस पितृलोक का वर्णन करते चले आरहे हैं, वह यमराज के अधिकार में है। इतने कथन से हम भी सहमत हैं। कारण कि प्रभु की रचना में मनुष्यों को बोध कराने के अर्थ लोकों की संज्ञा विशेष बांधी गई है। जिससे उस लोकके तत्व विशेष का ज्ञान स्पष्टतया होकर यज्ञादि कृत्यों में उस लोकविशेष के तत्वों की स्थापना सम्यक्तया हो। यह प्रत्यक्षही है कि राजा शब्द से यह तात्पर्य्य है कि जो शक्ति अपनी ही जैसी शक्तियों में सबको अपने यन्त्र में रखकर कार्य करने वाली हो उसी को राजा शब्द से व्यवहार करनेकी चाल सदासे चली आती है। लोक में भी पक्षियों का राजा पक्षी ही कहा गया है, पशुओं को पक्षियों का राजा नहीं कहा जाता, एवम् मनुष्यों का मनुष्य पशुओं का पशु। अन्य व्यक्ति समान गुणों को न रखने से राजा नहीं कही जाती। इसी प्रकार पितृलोक वायुविशेषों का स्थान है यहां का राजा भी यम नाम वाला वायुविशेष ही मानना बुद्धिमत्ता है। इससे यह सिद्ध नहीं हुआ कि यमराज अमुक आकृति वाला है। जहां वायु के स्थूल सूक्ष्म रूपसे अनेक नाम हैं वहीं सब से अधिक सूक्ष्म और सब पर

आधिपत्य रखने से एक शक्तिविशेष का नाम यम है। (यमो राजा ऽनुमन्यताम्) आपके दिये इस वेद वाक्य से भी इतनाही आशय निकलता है कि यम को राजा मानो वा जानो कोई विशेषता नहीं प्राप्त होती। रहा आपका यह कथन कि हवन के द्वारा पितृलोक में पहुँचा पदार्थ यमराज के अनुमोदन बिना पितरों को नहीं मिलता, सोलहों आने सत्य है। कारण कि पांचो तत्वों में चलन शक्ति वाला होने से वायुही पदार्थों को इतस्ततः पहुँचाता है। यदि और थोड़ा विचार करके देखो तो पितर तो पितर किसी स्थावर जंगम को भी कोई पदार्थ बिना वायुके अनुमोदन के नहीं मिलता। किञ्चित् अपनी ही ओर निहारिये। अन्नजलादिका ग्रहण, चलना, बोलना, सोना, उठना, बैठना, क्रिया संबंधी सभी कार्य्य वायु के द्वारा शरीरों में होते हैं। जहांतक विचार को बढाओगे वायुके बिना रचना का एक कार्य्य भी हस्तगत न होगा। आयुर्वेदवेत्ताओं का सिद्धान्त है कि (वायुः सर्वअगो महान्) वायु से शेष अन्य चार तत्व वायु के ही कार्यकर्ता हैं। भूलोक से द्युलोक पर्यन्त प्रत्येक पदार्थ की गति वायु के ही द्वारा होती है। इस हमारे सिद्धान्त की पुष्टि वेदवेत्ता सभी ऋषिगण करते चले आते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् अधिलोकों को दिखाती हुई स्पष्ट कहती है कि (पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरुत्तर रूपम्। आकाशः सन्धिः वायुः सन्धानम् इत्यधिलोकम्) यह कथन रूपसे यह बताया है कि आधाररूप होनेसे स्थावर तथा जंगम दोनों प्रकार की सृष्टि का मुख्यतम संबन्ध पृथिवी है। प्रकाशादि तथा वर्षा का कारण होने से द्युलोक पृथिवी की अपेक्षा एक पक्ष में गौण है। इनदोनों की परस्पर सन्धिका कारण आकाश है। पृथिवी और द्युलोक के गुणों का एक दूसरे में आधान कराने वाला वायुही है। इत्यादि अनेक प्रबल प्रमाणों और आप्त ऋषियों के कहने से यम भी एक वायुविशेष की ही संज्ञा है। आपका यह कथन भी

कि हवन के द्वारा जो पदार्थ पितृलोक में जाता है, वह यम के ही अनुमोदन से पितरों को मिलता है। स्वयं सिद्ध करता है कि यम वायुविशेष ही है। कारण कि हवन के द्वारा पदार्थ 'जिसगति' से जाता है वह किस दशा में जाता है। उसके छकड़े या ऊंट घोड़े लदकर नहीं जाते जो किसी आढ़ती की दूकान पर उतरें और वहां से सब को सदावर्त के भोजन की तरह मिलें। हवन के द्वारा पदार्थ की जो गति होती है उसको वायु भगवान् के बिना अन्य स्पर्श भी नहीं कर सकता। इस प्रकार आपके दिये हुए प्रमाणों से और आयुर्वेदवेत्ता ऋषियों के कथन से यही सिद्ध होता है कि यह यम कोई व्यक्तिविशेष ज्ञान गुण वाला शरीरधारी पुरुष नहीं। यह तो सृष्टिकर्ता के दिये हुए अपने अपूर्व गुणों से सृष्टि के सब कार्य्यों का कर्ता धर्ता हर्ता उनञ्चास प्रकार की संज्ञा वाले वायु विशेषों में एक वायु विशेष ही है। आपका यम परक कथन कसौटी पर लगाने से ठीक नहीं उतरा आप भी फिर से विचार करें यही सिद्ध होगा कि जो हमने कहा है।

## [ उक्तिः ]

अब हम यम का विचार करते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में यम वर्णन परक चौदहवां सूक्त प्रसिद्ध है। उसका द्रष्टा यम नामक ऋषि है। और देवता भी यम ही है। इससे अगले सूक्त के देवता पितर हैं। संस्कार विधि में उसके सम्पादक ने ऋतु परमेश्वर अग्नि वायु विद्युत् सूर्य इनको यम कहा है। परन्तु मन्त्रद्रष्टा यम को छोड़ दिया है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

मन्त्रों के ऋषि और देवताओं के विषय में अभी तक यही निश्चय हुआ है कि मन्त्र में जिसका प्रकाश किया गया है वह उसका

देवता और जिस व्यक्तिविशेष के द्वारा मन्त्रार्थ जाना गया वह उस मन्त्र का ऋषि कहा गया है। यद्यपि यह सिद्धान्त बहुत काल से चला आता है और वैदिक मतावलम्बी ऋषिगण और अन्य विद्वान् इस विचार को इसी प्रकार मानते चले आते हैं। तथापि इस विषय को विचारकोटि में रख कर विचार विशेष की आवश्यकता प्रतीत होती है। कारण कि यह मान लेने से कि जिस ऋषि के द्वारा जो अर्थ कहे वा जाने गये वही उसका ऋषि माना जाय वेदार्थ की इयत्ता होती है। जिस ईश्वर की यह रचना विशेष कही वा मानी जाती है, वेदकर्ता भी वही सिद्ध है। रचना देखने से यह प्रतीत होता है कि रचना में कार्य्य विशेषों के अर्थ एक ही वस्तु विशेष निर्माण की गई है।। यथा एक ही सूर्य बहुत कार्यों का कर्ता देखा जाता है, छहों ऋतुओं का परिवर्तन एक ही सूर्य के द्वारा होता है। ऋतु २ के अर्थ सूर्य पृथक् २ नहीं। एवम् सारी ही रचना इस विचित्रता से परिपूर्ण है। वेद भी इसी विचित्रता की रचना है। युगों २ के अन्तर अनेक प्रकार के आविष्कार इसी में से होते चले आते हैं। वेद को अनन्त ज्ञान मानने से यह कहना कि जो जिसने विचारा उसके अतिरिक्त और विचार नहीं हो सकता, सान्तता सिद्ध करना है। विद्वानों के मस्तिष्क सर्वदा अनूठी शक्तियों वाले होते चले आते हैं, न जाने किस काल में किसी के द्वारा क्या कुछ अनूठा विचार उत्पन्न हो। इत्यादि हेतुओं से ऋषि और देवताओं के विषय में हमारा यह विचार है है कि मन्त्र का देवता तो वह है ही जिसका वर्णन मन्त्र में है। परन्तु ऋषि मन्त्र का वह माना जाय जिस कार्य की उससे प्राप्ति हो। उदाहरण के लिये विचारिये जैसे कि किसी मन्त्र का देवता अग्नि है परन्तु अग्नि को जान कर जिस कार्य विशेष की प्राप्ति हो वह उसका ऋषि है। यह हमारा विचार है 'ऋषि गतौ' ऋषि शब्द

उक्त धातु से बना है। जिसके अर्थ ज्ञान गमन प्राप्ति हैं ॥ इस प्रकार माननेसे वेदों के विषय में इयत्ता न होकर अनन्तता सिद्ध होती है। हमारे इस विचार तथा पूर्व के मन्तव्य अनुसार इसमें कुछ भी दोष प्रतीत नहीं होता कि चौदहवें सूक्त का यमही उसका देवता और द्रष्टा है। वायुओं का उसमें वर्णनहै और यम नामक कोई व्यक्ति विशेष उस के अर्थों का बताने वाला है, एक २ नामके अनेकों होते चले आते हैं। रहा यहां के अगले सूक्त के देवता पितर हैं और भी स्पष्ट करते हैं कि पिछले सूक्त में सूत्रात्मा वायु का वर्णन है। जिसका संबन्ध सब लोक लोकान्तरों से है उससे अगले सूक्त में देशविशेष में रह कर कार्य्य करने वाले स्थूल वायुओं वर्णन है। यह कह कर कि पितर लोक में पितर वायु के अवलम्बन से रहते हैं और पितरों को जो कुछ प्राप्त होता है, हवन के द्वारा ही प्राप्त होता है, रूपान्तर में वायु ही हैं। फिर आपने इतने लेख से सिद्ध क्या किया। रहा यह कहना कि संस्कारविधि के सम्पादक ने सूक्त द्रष्टा को छोड़ दिया किस प्रकार ठीक हो सकता है ? आपके और हमारे कथन से यम पितर वायु ही तो सिद्ध होते हैं वायु को संस्कारविधि में यम बताया ही गया है फिर छोड़ा कहां केवल आपके विचार की भ्रान्तिहै। संस्कार विधि में जिस जिस को यम बताया गया हैं अपने कार्य्यों में सब यम ही हैं। नियम में रखने से यम संज्ञा है। जिसको जिस समय जिस प्रकार जो नियम में रखता है यम है इससे संस्कारविधि में जिन २ को यम बताया सभी ठीक है। इसमें आपको वक्तव्य विशेष का अवकाश ही नहीं। आगे चलिये यह बाण भी थोथाही छोड़ा।

## [ उक्तिः ]

जिसका वर्णन निम्न मन्त्र में मिलता है।

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥
१८-३-१३ अथर्व

(अर्थ) मर्त्यों के वीचमें जो पहिले मरा और मर कर जो इस लोक में पहिले आया। मनुष्यों के संगमन उस वैवस्वत यम राजाको हवि से सत्कृत करो। इस मन्त्र में विवस्वत् और मर्त्य यह दोनों पद निघण्टु में मनुष्य जाति के वाचक आए हैं। मर्त्य शब्द का अर्थ (चत्वारिश्रृंगा) इस मन्त्र के भाष्य में पतञ्जलि ने ( मर्त्या मरण धर्माणो मनुष्याः ) ऐसा किया है। इसलिए यहां पर यम ऋषि का ही अर्थ घटता है। वही उत्पन्न होकर मर सकता है और उसी का यम लोक में आधिपत्य भी हो सकता हैं। मरण स्थूल शरीर के वियोग का नाम है। ( मृङ् प्राणत्यागे) इस धातु से मरण वनता है। सूर्य्यादि जड़ पदार्थों में मरणका होना असम्भव है। ईश्वर स्वयं अमर है। इस लिए मन्त्रद्रष्टा यम ऋषि का ही वर्णन अनुमत है।

## [प्रत्युक्तिः]

ग्रन्थकर्ता ने यह मन्त्र यम के सिद्ध करने के अर्थ दिया है। परन्तु यम का ग्रन्थकर्ता का किया लक्षण उनके लिये स्वयं यम रूप है। ग्रन्थकर्ता इस मन्त्र का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो सव से प्रथम मरे और मर कर सव से प्रथम लोक में आये यह यम का लक्षण है मंत्र मे कहा यम का यह लक्षण यह सिद्ध करता है कि यह यम कोई व्यक्ति विशेष नहीं यम तो यहां प्राणवायु का नाम है। यह वात ग्रन्थकर्ता स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि ईश्वर मरणधर्म्मा नहीं और विवस्वत् तथा मर्त्य दोनों पद मनुष्यो में घटतेहैं। पतञ्जलिका साक्ष्य साथ में अकाट्य दिया है। फिर तो इसको मानना वलात् हो गया। परन्तु हमारे महाशय

ग्रन्थकर्ता ने यह न विचारा कि जहां ईश्वर मरणधर्मा नहीं वहां जीव को किस ऋषि ने मरणधर्मा माना है जब ईश्वर और जीव दोनों ही मरणधर्मा नहीं तो फिर यह मरणधर्म सिवाय पाँचभौतिक शरीर के किस में घट सकता है। तत्वों के संयोग का नाम शरीर और वियोग का नाम मरण रहा, शरीर ही में मरण धर्म घटा इसीको मन्त्र बताता है कि संयोग और वियोग वाले शरीर में जो प्रथम प्रथक् होता और प्रथम ही आता है वह यम संज्ञक समझो और उसको सदा उत्तम क्रियाओं से बलवान् और शुद्ध रक्खो, उसकी बलवत्ता और शुद्धि तुम्हारे लिये सदा सुख देने वाली है। शरीर से जीव का वियोग होने के समय प्रथम प्राण वायु निकलता है और गर्भ काल में प्राण वायु ही प्रथम आता है। शरीर के शेष अग्नि जल अन्य धातु आदि भस्म करने पर पृथक् २ होते हैं प्राण सब से पूर्ण पयान करता है। मन्त्र ने यम का वायु होना कितने स्पष्ट शब्दों में बताया इससे उत्तम यम का और लक्षण क्या होगा यहां भी आपका किया यम का लक्षण आपके अर्थ वागुररूप हो गया। वागुर में फँसा वह जीव तो निकल भी जाता है जो अपने को चञ्चलता रहित कर देता है। जो चञ्चलता से हाथ पद पीटता है वह वागुर में और फंसता ही जाता है। आप में चञ्चलता स्वभाव से ही सिद्ध है। अतएव आपका इस वागुर से निकलना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है। यहांतक कि आपके सब प्रहार आप पर ही हुए। कुछ सन्देह नहीं मार खाकर ही योद्धा बनते हैं। इन अपने दिये प्रमाणों पर फिर से विचार करोगे और फिर कुछ लिखोगे तो सम्भव है कि सावधानता आजाय इन प्रमाणों ने आपकी वह दशा कर दी जैसे कोई चौबेछबे होने गये थे मार्ग में किसी ने उन्हें दुबे कह दिया दो घरकी भी छिन गईं आपका यम विषय का वर्णन यहां समाप्त हो गया, इसमें कुछ शेष नहीं रहा आगे दूसरा विषय चलता है अब उस पर विचार होगा।

## [ उक्तिः ]

बहुत से मनुष्य इन बातों के स्वीकार करने में इसलिये डरा करते हैं कि यदि यह बात मान ली जायें तो वेदों में इतिहास मानना होगा। परन्तु अब इस बात का भय जाता रहा। आर्य्यप्रतिनिधि सभा ने आर्य्य पं० शिवशंकर जी से ( वैदिक इतिहासार्थनिर्णय ) नामक ग्रन्थ बनवाकर प्रसिद्ध कर दिया है। जिसके नाम से ही वेदों में इतिहास सिद्ध हो गया है। वेदों में जो इतिहास है उसका अर्थ क्या है इसका निर्णय इस ग्रन्थ में किया गया है। अर्थ कुछ हो परन्तु इतिहास प्रतिनिधि सभा ने वेदों में मान लिया है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

इतना लेख एक प्रकार का निष्फल कटाक्ष है इससे इसका उत्तर केवल इतना ही हो सकता है कि ग्रन्थकर्ता के प्रलाप का उत्तर दे कर हम अपना काल नष्ट करना नहीं चाहते। श्री पं० काव्यतीर्थ जी ने उसमें यही दिखाया है कि पौराणिक महाशयों ने जो वेदों में इतिहास कहे हैं वस्तुतः वे इतिहास नहीं हैं अलंकार हैं। इसको न समझ श्री पं० जी पर लांछन देना नोन देने पर आंख फोड़ने का दोष देना है बस इतना ही पर्याप्त है।

## [ उक्तिः ]

**हिरण्यकक्ष्यान् सुधुरान् हिरण्याक्षानयः शफान्।**
**अश्वाननश्नतो दानं यमो राजाभितिष्ठति॥**

यह मन्त्र संस्कारविधि में है। इसमें यम के अश्वों का वर्णन है इसका अर्थ यह है कि हिरण्यकक्ष सुधुर हिरण्यनेत्र लोहशफ अन्न न खाने वाले अश्वों पर यम राजा सवार होता है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

प्रथम तो यह मन्त्र अथर्ववेद का नहीं, तैत्तिरीय प्रपाठक का है। इससे इस पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत न होती थी परन्तु संस्कारविधि में आया है और यतिवर ने उद्धृत किया है इससे विशेष विचार की आवश्यकता हुई।

मन्त्र का जो अर्थ करके दिखाया गया है वह ठीक नहीं प्रथम तो मन्त्र में आये दान शब्द का अर्थ ही नहीं किया दूसरे अभितिष्ठति शब्द का अर्थ किया है सवार होना अभि उपसर्ग पूर्वक स्थागति निवृत्तौ धातु से बना है जिसका स्पष्ट शब्दार्थ है सब ओर स्थित। तृतीय शफ शब्द के अर्थ मूल के भी हैं, इनपर ध्यान न देकर अपने मन माने अर्थ कर जनता को धोखा दिया है। मन्त्र का सीधा अर्थ यह है। मन्त्र बतलाता है कि यह यम रूप वायु ही इन सब लोक लोकान्तरों के चलाने का कारण है। कारण कि स्वयं गति वाला होने से यावत् लोक लोकान्तर प्रकाश वाले तथा दूसरों से प्रकाश ग्रहण कर प्रकाशित होने वाले एवम् अंधकार है मूल जिनका उन सबके चारों ओर ठहर कर यही उनको चलाता है। और स्वयं कुछ इच्छा न रखता हुआ तुम्हारे प्राण रूप अन्न की उत्पत्तिके अर्थ जलका दान देता है अन्य लोक लोकान्तरों के गुणों का भी दान तुम को देता है।

## [ उक्तिः ]

**वैवस्वते विविच्यंते यमे राजनि ते जनाः। येनेह सत्ये-नेच्छन्ति यउ चानृत वादिनः॥**

यह मन्त्र संस्कारविधि में है। इसका अर्थ यह है कि जो मनुष्य सत्यभाषण तथा मिथ्याभाषण करते हैं उनका वैवस्वत यम-

राज के यहां न्याय होता है। इसीलिये यमराजा की सभा का (यमस्य सादनं समितिश्चावगच्छताम्। १८-२-५३· इस मन्त्र में वर्णन मिलता है। ईश्वर की सभा और उसके सदस्य हो नहीं सकते इस लिये यहां उसका विवेचन ही व्यर्थ है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

यह मन्त्र भी ग्रन्थकर्ता महाशय ने अपने इष्ट यमराजा की सिद्धि के अर्थ ही दिया है। यह भी अथर्व का नहीं। संस्कारविधि में होने से वक्तव्य की आवश्यकता है। मन्त्र का तात्पर्य्य यह है कि सत्य तथा झूंठ बोलने वालों का न्याय यमराजा के यहां होता है यही अर्थ ग्रन्थकर्ता को इष्ट है। परन्तु विचार इस पर करना है कि ग्रन्थ चाहे कोई क्यों नहो उसके समस्त विषय एकही व्यक्ति से संबंध नहीं रखते जिन व्यक्तियों के अर्थ उपदेश होता है वही २ उसके पात्र माने जाते हैं। अथर्व तथा अथर्व से संबंध रखने वाले अन्य ग्रन्थ प्रायः आयुर्वेद से संबन्ध रखने वाले ही माने जाते हैं। इस मन्त्र में जो उपदेश है उसका संबंध वैद्यों से विशेष है। मन्त्र में बताया गया है कि स्पष्टोच्चारण और अशुद्धोच्चारण ये दोनों वायु से होते हैं। इन रोगों का होना वायु की शुद्धि अशुद्धि पर निर्भर है। सत्य और अनृत शब्द स्पष्ट और अशुद्धोच्चारण के वाचक हैं। लोक में सत्य कहने के अर्थ यह व्यवहार होता है जब कोई मनुष्य सत्य नहीं कहता तो उससे कहा जाता है कि ठीक २ कहो साफ बोलो इससे सत्य के पर्यायवाची साफ और ठीक २ शब्द हैं तात्पर्य्य इसका यह भी है कि जिस शब्द को जहां से न कहना अशुद्ध और अनृत है ठीक २ स्पष्ट स्वच्छ भाषण को सत्य कहते हैं यदि और विचार किया जाय तो प्रिय मिष्ट अनुकूल हितकर भाषण को सत्य और

अप्रिय कटु प्रतिकूल हानिकर भाषण को भी असत्य कहना अनुचित नहीं। आयुर्वेदवेत्ताओं ने कफ वात पित्त से होने वाले रोगों को बताते हुए वाणी के रोगों में ( मूकमिणमिणगद्गदान् ) गूंगापन तथा तुतलाकर वा हकला बोलना तथा नासिका से बोलने वाले रोगों को वात दोष से होना बताया है। आयुर्वेद वेत्ताओं का यह निदान इसी प्रकार के मन्त्रों के आधार पर हुआ है। इसलिये मन्त्र में यम शब्द से वायु का ही ग्रहण होना युक्ति युक्त है। यदि हम ग्रंथकर्ता के अर्थों को मान भी लें तो यह वक्तव्य विशेष शेष रहेगा कि लोक में जो सत्यवादी तथा अनृतवादियों को दण्ड और लोकापवाद होता है वह कैसा? यहां के न्यायालय वृथा ही रहेंगे। यदि और सूक्ष्म विचार कर देखा जाय तो एक और विशेषता मन्त्र के शब्दों से यह प्रतीत होती है। अनृत वादियों का न्याय तो यम के यहां दण्ड के अर्थ होगा सत्यवादियों का क्यों क्या उनको भी दण्ड दिया जायगा। यह निश्चित है कि यम नरक का ही अधिकारी है स्वर्ग का अधिकारी यम को नहीं माना जाता स्वर्ग का अधिकारी इन्द्र पुराणों से स्पष्ट है। मन्त्र में सत्य और अनृत दोनों शब्द आये हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रन्थकर्ता का भाव मन्त्र में नहीं मन्त्र में वैद्यों के अर्थ वाणी के रोगों का उपदेश है और उसमें कारण वायु है अतएव मन्त्र में यम शब्द से बिना किसी ऊहापोह के वायु का ही ग्रहण है। रहा यह कि यम की ही सभा हो सकती है और की वा ईश्वर की नहीं प्रथम तो इस प्रतीक के अनुसार देखा गया इसका पता अथर्व में नहीं चला द्वितीय यह बात है कि मन्त्र अथर्व है ही नहीं प्रतीक अथर्व की कहीगई। इससे इनकी संगति भी नहीं मिलती न जाने यह प्रतीक किस विषय की है। यदि आगे मन्त्र भाग में आयेगी तो वहीं इसकी विवेचना भी करेंगे।

## [ उक्तिः ]

अपेमं जीवा अरुधन्गृहेभ्यः तंनिर्वहत परिग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार।
१८-२-२७

इस मन्त्र में यमदूत का वर्णन है । जिस समय में मनुष्य मर जाता है उस समय उसके गृहवाले कहते हैं कि "हे मृत के उठाने वालो ! घर में इसको अधिक मत रोको इस ग्राम से इसको बाहर लेजाओ यम का दूत जो मृत्यु है उसने इसके प्राणों को पितृलोक में पहुँचा दिया । इसी प्रकार एक मन्त्र में जरा को भी यम का दूत माना है । इसीलिये ( यौवने जीवानुपपृंचती जरा ) ऐसा पाठ मिलता है ।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता ने इस मन्त्र द्वारा केवल अपने इष्ट यम की सिद्धि के अर्थ उसके दूत का वर्णन किया है। जब अनेक प्रमाणों और युक्तियों द्वारा यम ही कोई देहधारी व्यक्ति सिद्ध नहीं हो सका फिर केवल दूत मात्र शब्द आजाने से क्या सिद्धिकी आशाहो सकती है। जो कार्य्य जिसके द्वारा लिया जाताहै उसकी दूत सेवक चार चाहे जो संज्ञा बांधलो विना संज्ञा बांधे कार्य्य चलना कठिन है जिस मृत्यु को आपने यम का दूत माना है उसका शरीर किन २ तत्वों से रचा गया आकृति क्या है यह न बता सकने पर बलात् यही मानना पड़ैगा कि वियोग होने के समय की एक दशा विशेष है। न यह शरीर धारी कोई व्यक्ति है और न वह कोई व्यक्ति सिद्धि होती है। जिसका आप इसे दूत मानते हैं। मन्त्र का अर्थ यह बता रहा है कि मृत्यु होने पर देह को किस प्रकार ठिकाने लगाया

जाय। यह कथन भी वैद्य काही है। मनुष्यों को यह उपदेश है कि जब किसी के यहां मृत्यु हो तो वे स्वयं मृत्यु और रोग की परीक्षा का ज्ञान न रखते हुए वैद्य से परीक्षा करायें। कारण कि सन्यास तथा मूर्छादि रोग ऐसे होते हैं कि जिनमें मनुष्य मृतक तुल्य प्रतीत होता है। इससे रोग और मृत्यु की परीक्षा रोग और मृत्यु के रूपों को जानने वालों से कराये। मन्त्र में इस विषय का वर्णन है मृतक देह को देख कर वैद्य कहता है कि अयि मनुष्यों यह मृत्यु से मरा है। मृत्यु संज्ञा प्राण वायु के निकलते समय की है। इसका प्राण मृत्यु से निकला है किसी रोग की दशा से श्वास चलना बन्द नहीं हुआ। अब यह देह अपने विकारों को छोड़ने वाला हो गया जिससे स्वस्थों को हानि पहुँचने की संभावना है। अब इसको गृह में रोकना हानिकर है। ग्राम से बाहर लेजाकर विधि के साथ इसका कार्य्य करो। ( असून् पितृभ्यो गमयांचकार ) इसका तात्पर्य्य है कि यदि तुमको यह सन्देह हो कि जैसे पक्षी अपने घोंसले से निकल इधर उधर जाकर पुनः अपने स्थान पर आजाता है एवम् इस देह से निकला प्राण पुनः आजाय तो इसका समाधान यह है कि मृत्यु के द्वारा निकला हुआ प्राण फिर नहीं आता मृत्यु ने उसे उसकी रक्षार्थ वा शुद्धि के अर्थ वायुमण्डल में प्रवेश कर दिया। मन्त्र में तो एक सार भरा उपदेश है। इसको न समझ विचारशील सज्जनों के समक्ष केवल प्रलाप कर देना विद्वत्ता को बट्टा लगाना है। इस दूतने भी आपके सिद्धान्त की रक्षा न कर उलटा आप पर ही प्रहार किया। आपने मृत्यु को यमदूत बताकर क्या फल प्राप्त किया इससे आप गरुड़पुराण के ही यम दूतों का आश्रय लेते तो अच्छा था उसमें पाश मुग्दर धारण करने का वर्णन आता। दधि के धोखे चूना क्यों खा गये। यदि मुंह फट गया हो तो औषधि हम बताते हैं चूने से फटे मुख के लिये लवंग चबाना गुण करता है आप

शुद्धविचार की लवङ्ग चबाओ शान्ति होगी । चलिये आगे चलिये।

[ उक्तिः ]

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरंती।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गलोक मधिरोहयेनम्॥
१८-३-४।

मरण समय जो गोदान कराया जाता है उसका इस मन्त्र में वर्णन है। इसका अर्थ यह है कि हे अघ्न्ये मरकर जीव जिस लोक में जाता है तू उसे भली प्रकार जानती है। इसलिये इस गोपति को जिसने तेरा पालन किया है देवताओं के मार्ग में होकर स्वर्गलोक में पहुंचा दे यहां पर अघ्न्या पद गो का विशेषण है इसलिये गो शब्द से अन्य किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं हो सकता।

[ प्रत्युक्तिः ]

इस मन्त्र में अघ्न्याशब्द गो का वाचक है। इसको हम क्या सभी विद्वान् मानेंगे केवल भेद इतना है कि आपने अपने पक्ष की सिद्धि के अर्थ गो शब्द से पशु का ग्रहण किया है। यद्यपि मन्त्र के शब्द स्वयं अपने में दिये गो वाचक अघ्न्या शब्द का भाष्य कर रहे हैं परन्तु आपके स्वार्थ ने उन पर दृष्टि नहीं डाली। इससे आप का अर्थ भी क्या था आप तो चौथे ज्योतिषी की समान बुद्धि वाले पुरुष हैं। मन्त्र का तात्पर्य है कि हे सूर्य्यरश्मियो! तुम्हारा हमारे प्राणों से घनिष्ठ सम्बन्ध है तुम सर्वदा प्रकाशित लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करती हो यह जीव तुम्हारा ही दूसरा रूप जो पञ्चतन्मात्रा हैं उनका स्वामी है तुम इसके अनुकूल हो इसको उत्तम लोको को प्राप्त करो योगियो की दो गति कही

गई हैं सूर्य्यलोक को उत्कट योग वाले प्राप्त होते हैं। योगाभ्यास वालों के अर्थ यह उपदेश है सर्वसाधारणों के लिये नहीं। ग्रंथ कर्ता ने जो भाव अपने क्षुद्र भाव से ग्रहण किया है मन्त्र का वह भाव नहीं। मन्त्र उच्चकोटिका उपदेश देता है इस बातको बालक भी समझ सकता है कि भला यह पशु रूप गौ तो पृथवो के सब देशों में भी जाने आने की शक्ति नहीं रखती यह विचारी आकाश मण्डल में किस प्रकार जा सकती है? यदि इसके पक्ष होते तो यह मान भी लेते कि आकाश के सब भागोंमें नहीं तो कुछ भाग में तो जा सकती है। यह तो स्थानों की छत पर जाने में भी असमर्थ देखी जाती है। फिर इसकी गति लोक लोकान्तरों में बताना बालकपन न मनाया जाय तो और क्या कहा जाय। वेद इतने उच्च ज्ञान वाला इतनी अज्ञता की बात कहै। कैसे विचारशीलों की बुद्धि में आसकता है। इतने पर ग्रंथकर्ता कहते हैं कि हमारी बात मानो जो मानने योग्य नहो कैसे मानी जाय। यदि आपके पक्ष को आपके मतावलम्बी किसी अंश में भी मान लेते तो औरों को भी मानने में संकोच न होता। आप के परमगुरु सायणाचार्य महाशय हो आपके विरुद्ध कहते हैं। आपने तो मन्त्र का तात्पर्य्य बताते हुए कहा कि मरण समय पर गोदान करना इस मन्त्र से पाया जाता है। वेदों के धुरंधर पण्डित सायणाचार्य्य महाशय कहते हैं कि इस मन्त्र से अस्थिसंचय के दिन चिताका सेचन करे। गौ के दुग्ध में और विषनाशक ओषधियोंका योग करे। आप के असंगत अर्थों से तो सायण महाशयका कथन किसी कोटि में अच्छा है। अस्थि-संचय काल में इसप्रकार का विधान पाया भी जाता है। और किसी अंश में उसके लाभ भी प्रतीत होते हैं। आप गुरु से भी पृथक् चले और बे ढंगे चले जिसका फल यह हुआ कि आप की बात मानने योग्य नहीं हुई, वस्तुतः मानने योग्य है भी नहीं। देको

हमने पते की कही है आप त्रादी होते हुये भी वाहर से नहीं तो भीतर से अवश्य मानेंगे । और अन्य विचारशील तो मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए मानेंगे ही आप भी सत्य कहिये, शत्रुओं को भी मानना पड़ेगा । परमात्मा आपको सुबुद्धि दे और फिर वहीं आओ जहां से आप रुष्ट होकर गये हैं ।

[ उक्तिः ]

देवताओं का मार्ग देवयान कहाता है ।

य एतस्य पथो गोसारस्तेभ्यः स्वाहा ।१।

य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ।२।

य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ।३।

संस्कारविधि में ये मन्त्र हैं । इनका अर्थ यह है कि देवयान तथा पितृयान इन दो मार्गों के जो रक्षक स्वामी हैं उनके लिये यह हवि हो । संसार में मार्ग कहीं पर पहुँचने के लिये होता है । यदि पितृलोक कोई स्थल नहीं है तो मार्ग कहां के लिये बनाया गया । इस विषय पर भी विद्वानों को पक्षपात छोड़कर विचार करना चाहिये । वैदिक विषय में पक्षपात करना अथवा पदों को खेंचातानी करके अर्थका अनर्थ करना विद्वानों का काम नहीं है । इसका अधिक विवरण आपको इसी ग्रन्थ के मन्त्रभाग में मिलेगा ॥

[ प्रत्युक्तिः ]

इतने लेख में बात केवल इतनी निकाली गई है कि इन मन्त्रों में मार्ग शब्द आया है । मार्ग कहीं जाने लिये होता है पितृलोक भी एक स्थल है । ययगतौ धातु से यान शब्द होता है जिसका तात्पर्य्य है किसी वस्तु वा स्थान को प्राप्त होना उसको यह तात्पर्य्य नहीं कि मोटर, रेल, घोड़ागाड़ी वा बैलगाड़ी आदि चलने वालों कोही

मार्ग कहते हैं। यह तो हम पूर्व ही कहचुके हैं कि भूलोक मध्यलोक द्युलोक ये संज्ञा हैं, इनमें जिस २ प्रकार पदार्थों की प्राप्ति होती है वही उसका मार्ग है। यदि पितृलोक होने से मार्ग शब्द माना जाता है तो मोक्षमार्ग धर्ममार्ग ये शब्द भी आते हैं ये कौन से स्थल विशेष हैं। इस प्रकार के थोथे बाणों से क्यों अपने असत्यके तर्कस को रिक्त करे डालते हो रहनेदो अड़े वक्त पर काम आयेंगे। रही यह बात कि वैदिक विषयमें पक्षपात वा खैंचातानी नहीं करनी चाहिये। अन्यों को तो आपका यह उपदेश आगे को ही कार्य देगा परन्तु आपने तो इस उपदेश का ध्यान पूर्णतया किया है। पदे २ पक्षपात और खैंचातानी प्रत्यक्ष है। उपदेश उसीका माना जाता है जो स्वयं भी उस पर चल कर दिखाये। यह आपका कथन कि इन विषयों का अधिक विवरण इस ग्रन्थ के मन्त्रभाग में मिलेगा हमने भी मन्त्रों की व्याख्या यहां दिग्दर्शन मात्र ही करी है। जहां आप उन सार भरे विषयों की दूकान खोलोगे वहीं खोटे खरे की परख करने वाला मैं भी उपस्थित हूँगा। यहांतक ग्रन्थकर्ता की दो बात पूर्ण हुई आगे तीसरी चलेगी।

[ उक्तिः ]

तीसरी बात भूतविद्या के संबंध में है। अदृश्य अथवा अत्यन्त सूक्ष्मदशा में रहकर जो मनुष्यों को कष्ट देते हैं उनको भूत कहते हैं। पुराणों में भूतों को देवयोनि माना है। छान्दोग्य के सप्तमाध्याय में सनत्कुमार नारद संवाद प्रसिद्ध है। उसमें भूतविद्या का नाम है। शंकराचार्य्य ने उसके भाष्य में भूतविद्या का अर्थ भूततन्त्र किया है। आयुर्वेद के सुश्रुत ग्रंथ में न केवल उसका वर्णन ही है किन्तु उसके दूर करने का उपाय भी बताया गया है। संस्कारचन्द्रिका में जो कि संस्कारविधि की टीका है श्री पं० भीमसेन जी ने जातकर्म का विवरण लिखते हुए जहां पर

( शंडाकर्म उपवीरः ) यह दो मन्त्र आये हैं वहां भूतों को कीटाणु ( जर्म्स ) माना है। जिनको देखना हो प्रथम संस्करण मंगाकर देख लें।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रंथकर्ता के इस लेख में प्रमाण नहीं केवल वार्तिकमात्र है। आपने इसमें यह सिद्ध करना चाहा है कि भूत जिसको वर्तमान में बहुत से मनुष्य कुछ नहीं मानते वह है और स्वयं ही अपना काल्पनिक लक्षण भी कर दिया है। आप लिखते हैं कि जो अदृश्य अथवा सूक्ष्मदशा में रह कर मनुष्यों को कष्ट दें। प्रथम तो आपका यह काल्पनिक लक्षण व्यभिचारी लक्षण है। कारण कि सभी रोग अदृश्य रूप से मनुष्यों को प्राप्त होते हैं साक्षात् आकृति रोगी तो रोगी वैद्यों को भी प्रतीत नहीं होती इस आपके लक्षणानुसार सभी रोगों की भूत संज्ञा हो गई। लोकभाषा में ऐसा कहते भी हैं कि सौ भूत और एक ज्वर, बात को मूल रूप से न कहना प्रलाप मात्र ही माना जाता है भूत एक मानसिक व्याधि है लोकभाषा में अनपढ़ भी इस बात को कहते हैं कि "शंका भूत और मनसा डाइन" इस व्याधि का प्रभाव भीरुचित्तों पर अधिक होता है। तमोगुण के अधिक बढ़ जाने से मन में एक इस प्रकार की उत्ते-जना उत्पन्न होती है कि जिससे मनुष्य अण्ड बण्ड कहने लगता है। जो दशा मन में भूत व्याधि के उत्पन्न होने से होती वह दशा सन्निपात रोग में भी हो जाती है। स्त्रियों की योनियों की व्याधि में भी इस प्रकार की दशा होती है। तात्पर्य्य इसका यही है कि जिन व्याधियों के कारण वा बिना किसी व्याधि के मन में एक प्रकार की वेदना हो उस व्याधि को भूतव्याधि कहते हैं। इसके अच्छे प्रकार ज्ञान को भूतविद्या कहते हैं। अन्य व्याधियों के अर्थ औषधि देनेवालों को तो चिकित्सक कहते हैं परन्तु भूतव्याधि के

चिकित्सक को लोक में सयाना कहते हैं जिसके अर्थ है बड़े चतुर मनुष्य के, यह व्याधि सर्वदा ओषधियों से ही नहीं जीती जाती बुद्धि के द्वारा इसके अनेक उपाय करने होते हैं। और जब विशेष बढ़ जाती है तो काथादि से तथा स्नान लेपन आदि भी कराना कहा गया है। जो बात आप सिद्ध कराना चाहते हैं उसको प्रत्यक्ष क्यों नहीं कहा। आपके लक्ष्य में तो यह बात होनी चाहिये थी कि मरने के पश्चात् यह जीव भूत हो जाता है और बालकों तथा सुकुमार स्त्रियों को चिपटता है। उसको न जाने किस कारण से छिपाया और २ प्रकार कहने लग गये यह तो सिद्ध ही है कि भूत एक व्याधि का का नाम है। चाहे वह कीटाणुओं के प्रभाव से हो वा त्रसरेणुओं समूह के शरीर में पहुँचने से हो। भूमि इसकी मन की निर्बलता और मलिनता है। आपके मत से मरा हुआ जीव तीन काल में भी नहीं हो सकता। आपके पुराण और कोश जब इसको सृष्टि की आदि ही से देवयोनि में मानते हैं फिर आप किसके आधार पर यह सिद्ध करने का साहस करते हो। यह हम पूर्व बता चुके कि यह मानसिक व्याधि है और मन की भीरुता, निर्बलता तथा मलिनता इसकी उपत्ति के कारण हैं। अब यह बात चिकित्सक के आधीन है कि वह जैसा निदान कर ले वैसी ही चिकित्सा करे। यह भी कह चुके हैं कि इसके चिकित्सक को बुद्धि विशेष की आवश्यकता है। जिस प्रकार से इसको नाश करना समझे करे। इसके उपाय भी अनेक हैं। शास्त्रकारों ने इसकी उत्पत्ति के कई कारण बताये हैं परन्तु मरने के पश्चात् जीव का भूत होना किसी ने नहीं माना बस आपका मानसिक रहस्य तो आपके भीतर ही रह गया जो आप सिद्ध करना चाहते थे न हो सका।

[ उक्तिः ]

मलेरिया प्लेग हैज़ा आदि रोगों के बहुत से अदृश्य अणुकीट

मनुष्य को अचानक मार डालते हैं यह बात सबको विदित है। अणु कीट के स्वरूप में ही यदि भूत माना जाय तब भी तो सत्यार्थप्रकाश का कथन प्रौढ़िवाद: मात्र ठहरता है। उसमें तो सिवाय भूतकाल के और कोई भूत माना ही नहीं है। अथर्व में एक सूक्त ही भूतों के वर्णन में आता है। जो इसी ग्रन्थमें अन्यत्र मिलेगा। हमारा प्रयोजन केवल इतनाही है कि किसी न किसी स्वरूप में भूत का सिद्धान्त ग़लत नहीं है। यदि सिद्धान्त ग़लत होता तो वेद में उसका वर्णन न होता है।

## [ प्रत्युक्तः ]

इसका बहुत सा उत्तर तो पूर्व हमारे लेख में आगया इतने लेख में केवल इतने मात्र का उत्तर देना है कि श्री स्वामी दयानन्द ने भूत को केवल काल बताया है, भूत को मानसिक व्याधि नहीं कहा। ग्रन्थकर्ता को यह विदित हो कि विद्वान् प्रश्नकर्ता के वा लोक में व्यवहार होते कार्यों का प्रचलित भाग देखा करते हैं। और उसका जैसा उत्तर योग्य हो देते हैं। श्रीस्वामी दयानन्द यतिवर ने भूत के विषय में जो कुछ कहा है वह ठीक है यदि कोई विद्वान् किसी विषय पर कुछ कहे तो इसी प्रकार का उत्तर देना बुद्धिमत्ता है। अन्यथा प्रलाप है। बहुत काल से इस भूत के विषय में आप जैसे महानुभावों के कृपाकटाक्ष से यह बात बताई जा रही है कि मरने के पश्चात् यह जीव ही भूत बन जाता है इसीके अनुकूल व्यवहार भी होता दीखता है। सम्प्रति यह रोग दुराचारी और दुराचारिणी पुरुष स्त्रियों को होते देखा गया है इसी के विषय का सत्यार्थप्रकाश में प्रश्न है और प्रश्नकर्ता के भाव को समझ इसी विषय का यतिवर ने उत्तर दिया है जिससे कि प्रपञ्चकों को ऐसा करनेका साहस न हो प्रायः लोकमें देखा भी ऐसा ही जाता है। इस लिये यतिवर का कथन सत्यार्थप्रकाश में बड़ी योग्यता को लिये हुए है। जिस अपने लक्ष्य को

अर्द्धाङ्ग रोगी समझ सिद्ध नहीं कर सके कीटाणु ही मानने पर उतारू हुए वस्तुत: वह है भी कोई पदार्थ नहीं। जिस भूतव्याधि का वर्णन शास्त्रों में है वह व्याधि है उसी का वर्णन वेद में है जहां आप उससे यह सिद्ध करेंगे जो आपका आभ्यन्तरीय लक्ष्य है वहां आपके साथ मेरी उपस्थिति अवश्य होगी, पूरा रहस्य वहीं हस्तगत होगा।

## [ उक्तिः ]

अब बात यह रही कि यदि भूत कोई है तो दीखता क्यों नहीं इसका उत्तर तो बहुत सरल है। संसार में अनेक तत्व ऐसे हैं जो होते हुए भी मनुष्यों को नहीं जान पड़ते, उनके निर्देश के लिये ही शब्दप्रमाण रूप वेद चौथा प्रमाण माना गया है। यदि प्रत्यक्षवाद ही समस्त द्रव्यों के बताने में समर्थ होता तो वेद की क्या आवश्यकता थी केवल प्रत्यक्षवाद के नास्तिक होते हैं, आस्तिक नहीं। कहाँ तक कहें अथर्ववेद में इस प्रकार के अनेक विषय विद्यमान हैं। जिनको बाबूपार्टी के नास्तिक समाजी कदापि नहीं मानेंगे। रहे द्विजगण उनका तो सर्वस्व ही वेद है। जो बात वेदों से सिद्ध होगी द्विज उसको अवश्य मानेंगे॥

## [ प्रत्युक्तिः ]

इतने लेख में कोई बात भी इस प्रकार की नहीं जिसका उत्तर विचार पूर्वक देने की आवश्यकता हो। ग्रन्थकर्ता को इतनी धृष्टता है कि आर्यसमाज के बाबू पार्टी के नास्तिक इन बातों को नहीं मानेंगे और ब्राह्मण मानेंगे ग्रन्थकर्ता का यह कथन प्रलाप है। प्रथम तो बाबू पार्टी में सज्जनों का यह विचार नहीं कि वेद की बात न माने वेदको तो वे अपना सर्वस्व मानते हैं। हां यह ठीक है कि वेद में से जैसे भाव आप निकाल रहे हैं इनको मानने में विचारशीलों को तो संकोच हो ही गा सत्य कहो शत्रुको भी माननी पड़ेगी रहा यह

कि जो चार पांच बात कहकर आपने ब्राह्मणों को अपनाया है कि वही मेरी हू में हू मिलायें उन ब्राह्मणों में भी इतने क्षुद्र भावों वाला दृष्टि में नहीं आता जो आपकी अण्डवण्ड बातों को स्वीकार करे यह तो आप के लेखों से ही विदित होता है कि भीतर से आप भी इन बातों को ऐसा नहीं मानते जैसा कि क्रोधवश लिखकर प्रकाश कर रहे हो। आपने इस क्रोध का व्यवहार अच्छी प्रकार नहीं किया यदि अच्छी प्रकार करते तो सब आपके साथी होते इस प्रकार कोई क्रोधी वा अभ्यन्तर में वेदों का शत्रु तो आपकी हां में हां मिला देगा विचारशील तो आर्य हो वा धर्मसमाजी हो आपके कथन से सहानुभूति करने में संकोच ही करेगा मैं भी ब्राह्मण पार्टी का ही एक व्यक्ति हूँ। जब कोई अज्ञानी सभी ब्राह्मण मात्र को बुरा कहता है तो बुरा जान पड़ता है और प्रकारों से यदि आप द्वेष को छोड़ कर कार्य करें तो अन्यों की अपेक्षा आपका साथी रहने का प्रयत्न करूंगा कभी आपको मन से बुरा नहीं समझता यह भी जानता हूँ कि किसी अंश में आपका क्रोध अनुचित नहीं यदि आप मान-हानि का अभियोग चलाते तो आपका साक्षी रहता। परन्तु वेदों के विषय की आपके द्वारा होती हुई क्षति का उत्तर देने में विवश होगया कारण कि वेद बड़ी उच्चकोटि की शिक्षा देते हैं उनके उन भावों को न समझ क्षुद्रता प्रकट कर जनता में उनका अपमान कराना महापाप है, इसी विचार के अन्य द्विजगण भी आप के व्यव-हार से संतुष्ट न होंगे अब भी धड़ा फेर कर बांधो आपकी बात सब को माननी पड़ेगी और आपके मनका सन्ताप भी शान्त हो जायगा।

## [ उक्तिः ]

बाबू पार्टी के नास्तिक समाजियों ने अभीतक किसी विषय पर विचार नहीं किया है। केवल सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें

समुल्लास को देखकर विद्वानों का ना जायज़ मज़ाक उड़ाया है, या संगीतरत्नप्रकाश के २, ४, गंदे भजन याद करके पौराणिकों को भला बुरा कहा है। इससे उपहास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। मैंने जहां तक देखा और विचारा वहांतक पौराणिकों के सभी सिद्धान्त अथर्ववेद पर अवलम्बित प्रतीत हुए। इसी लिये (विचारार्थ) इस ग्रन्थ का लिखना आरंभ किया है।

## [ प्रत्युक्ति ]

लेख सारसे रिक्त है केवल द्वेष से कार्य्य लिया गया है। इस विषय में हम पूर्व लिख भी चुके हैं सब संस्थाओं में सब प्रकार के पुरुष होते हैं बाबू पार्टी में ऐसे सज्जन भी उपस्थित हैं जो सर्व प्रकार वेदों के अर्थ अपना तन मन धन लगाकर कार्य कर रहे हैं। यह आपको विदित है कि संसार में एक दूसरे का मेल संस्कारों से होता है किन्हीं के संस्कार मिलते हैं किन्ही के नहीं मिलते, आप का संस्कार जिनसे नहीं मिला उन्हीं से अन्यों का मिला हुआ है। जिनसे आपको द्वेष है उनसे द्वेषकी रीति पर व्यवहार कीजिये परन्तु पहाड़ पर ठोकर खाकर घरकी चक्की न फोड़नी चाहिये। रही यह बात कि पौराणिकों के सभी सिद्धान्त अथर्व पर अवलम्बित हैं हमारा विचार इसमें आपसे भी चढ़ा हुआ है। हमारे विचार में तो संसार भर के सिद्धान्त वेद के ही आश्रय पर निर्भर हैं। केवल व्यवहार मात्र ही में भेद प्रतीत होता है यदि यह व्यवहार का भेद शुद्ध होजाय तो सारे झंझट मिट जायँ।

## [ उक्तिः ]

संसार में कठिन से कठिन और सरल से सरल कोई भी विषय क्यों न हो जब तक उस पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा जाता तब तक उस पर विचार नहीं होता। इसीलिये अब विचार करने का अव-

सर प्राप्त हुआ है। सब लोग प्रेम पूर्वक विचार करें। केवल प्रतिनिधि के प्रस्ताव पास करने से अथवा समाचार पत्रों में किसी को बुरा भला कहने से काम न चलेगा।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता का यह लेख किसी प्रकार भी शंका का स्थल नहीं सब को प्रेमपूर्वक विचार करना चाहिये यद्यपि ग्रन्थकर्ता ने अपने इस उपदेश का अनुष्ठान स्वयं नहीं किया परन्तु अन्य सज्जनों को अवश्य करना योग्य है। आपका यह कथन कि चाहे विषय जटिल हो या सरल उसपर कुछ कहने से ही विचार होता है सत्य है अन्यों को मैं कह नहीं सकता मैं तो आपके इस ग्रन्थ बनाने का बड़ा कृतज्ञ हूँ कारण कि चाहे अपने द्वेष बुद्धि से ही लिखा है परन्तु वेदों पर भविष्य में उठने वाले दोषों पर विचारकरने का अवसर दिया। मैं तो आपको धन्यवाद देता हूँ विचार शीलों का विचार है कि इष्ट मित्रों की कुशलता के साथ शत्रुओं की भी कुशल चाहो। (जीवन्तु मे शत्रुगणा सदैव येषां प्रसादात् सु विचक्षणोऽहम्) आपने यह उपकार किया है। जो पुरुष उत्तर देने में निर्बल होता है वही कुवाक्यों से कार्य लेता है यदि हमारे पास प्रतिपादन की सामग्री उपस्थित है तो समाधान करें कुवाच्य कह कर असभ्यता से कार्य न लें॥

## [ उक्तिः ]

जो मेरे भाई अशक्त होकर प्रतिनिधि की नौकरी कर रहे हैं उनके लिये तो मुझे कुछ कहना नहीं है। क्योंकि वे लाचार हैं। यदि वे ऐसा न करें तो निर्वाह नहीं हो सकता। परन्तु ईश्वर की दया से जो समर्थ हैं वे गुलामी जीवन में क्यों पड़े हुए हैं। उनको स्वतन्त्र होकर वैदिकधर्म का प्रचार करना चाहिये।

[ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता का यह कथन है कि अशक्तों से मुझे कुछ नहीं कहना सर्वथा असत्य है कारण कि प्रतिनिधि के उपदेशक प्रायः सभी हमारे जानते पहचानते हैं कोई अशक्तता से नौकरी नहीं करता सब अपनी प्रसन्नता से कर रहे हैं। उनका विचार आपके विचारों से बहुत बढ़ा चढ़ा है। जो स्वतन्त्र हैं वे भी वैदिकधर्म का कार्य्य सत्यता से कर रहे हैं जैसे आपने स्वतन्त्र होकर कार्य किया है ऐसा ही कराने का उपदेश औरों का है। उपदेश वही माना जाता है जो शुद्धभाव से कहा जाय आपका उपदेश शुद्धभाव से नहीं अतएव सज्जनों को इसके अनुकूल चलना रुचता नहीं।

[ उक्तिः ]

निन्दा स्तुति के बंधन में पड़ कर अथवा धन के लोभ से अन्याय पंथका अवलम्ब लेना विद्वानों का काम नहीं है। इसी-लिये ( निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवंतु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ऐसा नीतिशतक में भर्तृहरि ने कहा है। अब हम प्रस्तावना के समाप्त करने से पहिले पाठकों से दो बातों का निवेदन करना चाहते हैं। उनमें से एक तो यह है कि इस ग्रन्थ में मन्त्रों के नीचे जो भाषा लिखी हुई है यह केवल मूलपदों का अनुवाद मात्र ही है। इसलिये जिनको अधिक देख भाल करनी हो वह अथर्ववेद सभाष्य मंगाकर पढ़े।

[ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता ने इसलेख में यह नहीं बताया कि सभाष्य अथर्व आपका भाष्य है वा सायण महाशय के भाष्य के लिये ही आज्ञा है यदि आपने भाष्य पर कृपा की है तो मूल पदों के अर्थों ही से

उसकी योग्यता विदित है और सायण महाशय के भाष्य को देखने की आज्ञा है तो यह हम दिखा ही चुके हैं कि आप सायण महाशय के भी विरुद्ध चले हैं।

[ उक्तिः ]

दूसरी बात यह है कि आजकल ( वेदत्रयीसमालोचन ) नामक एक पुस्तक मैं लिख रहा हूं। जिसमें ऋग् यजुः साम इन तीन वेदों का आलोचन करूंगा और शतपथ आदि ब्राह्मणों का भी रहस्य बताने का प्रयत्न करूंगा। इसलिये इस ग्रन्थ के पढ़ने बाद उसके पढ़ने के लिए भी आप सचेष्ट हैं।

[ प्रत्युक्तिः ]

धान का खेत पुराल को देखने से ही जाना जाता है आपके इसी छोटे से परिश्रम ने खुली आंखों के मिचाने का कार्य्य कर दिखाया यदि कहीं आप जैसे संकुचित विचार वालों की उन पर लेखनी उठ गई तो प्रलय की भांति जगत् घोर निद्रा में पड़ जायगा ईश्वर आपको सुमति दे। एक यह बात प्रतीत नहीं होती कि जब आपके मन्तव्यानुसार आप के पूर्वजों ने सब के रहस्य खोल धरे हैं फिर आप इतना कष्ट क्यों कर रहे हैं इससे तो यह विदित होता है कि या तो आपको उस कथन में भी सन्देह है वा यूं कहो कि उनके कथन में जो कुछ अनुकूलता है आप उस सबको भी वैदिकधर्म के प्रतिकूल करके दम लेंगे। जैसी आपकी इच्छा। इतने लेख में आपने जनता से तो दो बात क्या कहीं, अपने पुरुषार्थ को प्रकट करते हुए विज्ञापन भी साथ ही में दे दिया।

[ उक्तिः ]

इन दो समाचारों के बाद अब मैं इस प्रस्तावना से अलग होता

हूँ। जब तक इस ग्रन्थ में दिये हुए मन्त्रों का निष्पक्षपात अर्थ करके कोई अन्य विद्वान् आपको न दे तब तक अपने हृदय मन्दिर में इसको स्थान दीजिये सत्य सनातन वैदिकधर्म का विजय हो।

निवेदक अखिलानन्द कविरत्न माघशुक्ला तृतीया संवत् १९७२।

## [ प्रत्युक्तिः ]

यदि आप अपने विषय से अलग होते हैं तो हम भी इस से निश्चिन्त होते हैं। रही यह बात कि जब तक कोई मन्त्रों के निष्पक्षपात अर्थ न करें तब तक हृदय मन्दिर में रखिये। आपके अर्थों की निष्पक्षता तो हमने प्रकट करही दी जिसको आपका मन जानेगा और जो विद्वान् निष्पक्षता से देखेंगे उनको भी विदित हो ही जायगा। हम भी यही चाहते हैं कि सत्य सनातन वैदिकधर्म की विजय हो भेद केवल इतनाही है कि आप आधुनिक का नाम सत्य सनातन कहते हैं और हम वस्तुतः सनातनधर्म की विजय चाहते हैं। जो सत्य सनातन होगा उसी की विजय होगी और अब तक हुई भी है। ग्रन्थकर्ता ने अपने ग्रन्थ को चार विभागों में विभक्त किया है प्रथम भाग में प्रस्तावना नाम से एक प्रकरण समाप्त किया है, दूसरा भाग अवतरणिका नामसे रक्खा है, तृतीय भाग अवश्य विवरण नाम से कहा है चौथा अथर्वालोचन रक्खा है। हमारा विचार है कि हम प्रत्येक भाग का उत्तर एक २ भाग का एक २ ट्रैक्ट बनाकर दें इससे दो लाभ हमने विचारे हैं एक तो यह कि जितना भाग तैयार होता जाय उतनाही जनता के हाथ में शीघ्र पहुँच जाय द्वितीय यह कि यदि हमारे कथन में कुछ त्रुटि होगी तो सज्जन उसकी समालोचना करके मुझे सावधान कर देंगे। हमने अपने ग्रन्थ में ग्रन्थकर्ता के पुस्तक का लेख अविकल रूप से रक्खा है यद्यपि हमारे इस श्रम को सज्जन वृथा ही समझेंगे परन्तु हमने इसमें यह लाभ शोचा है कि

पाठकवृन्द को एक ही हमारे पुस्तक पर व्यय तो करना पड़ैगा परन्तु एक ही से दोनों के देखने का लाभ होगा।

ओ३म् शम्

इति श्री श्री० पं० अखिलानन्द कविरत्न कृत अथर्ववेदालोचनमें प्रस्तावना विषय का उत्तर अथर्ववेदाचोलन मीमांसा द्वारा समाप्त हुआ।

निवेदक—

हरिशंकर दीक्षित।

श्रावण शुक्ला द्वितीया गुरुवार संवत् १९७५ ॥ ८—८—१९१८ ई०

[ उक्तिः ]

# अवतरणिका ।

करुणालय वरुणालय भक्तानुकम्पी उस भगवान् के लिये अनेक धन्यवाद हैं। जिसकी प्रबल प्रेरणा से प्रेरित होकर आज मैं इस ग्रन्थ का आरम्भ करता हूँ। अनेक जन्मों के पुण्यसञ्चय से मेरा जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ है। वेदाध्ययन ब्राह्मण का निष्कारण धर्म्म है। ब्राह्मण जाति के आधार पर ही वेद जीवित हैं। इसलिये वेदों की रक्षा के लिये उनका स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म्म है।

[ प्रत्युक्तिः ]

यह पूर्व कह चुके हैं कि ग्रन्थकर्ता ने अपने ग्रन्थ को चार भाग करके समाप्त किया है। प्रथम भाग प्रस्तावना की मीमांसा कर चुके अब यहां से अवतरणिका का उत्तर आरम्भ करते हैं। अपने लेख में ग्रन्थकर्ता ने अपने ब्राह्मण वर्ण की प्रशंसा करते हुए वेदों की रक्षा करना और पठन पाठन अपना मुख्य धर्म कहा है इसमें हमें भी कुछ वक्तव्य नहीं। प्रार्थना के शब्दों में जो यह कहा है कि मुझे इस कार्य की ओर परमात्मा ने प्रेरित किया है इसमें इतना वक्तव्य है कि सबको सब कार्यों की ओर परमात्मा ही प्रेरित करता है। क्या औरों के कार्य ईश्वर की प्रेरणा से नहीं होते। यदि सभी के कार्य किसी शक्ति विशेष की प्रेरणा से होते हैं तो फिर उनको मनुष्य का कर्तव्य कह कर उसमें आपत्तियां

क्यों उत्पन्न की जाती है? इससे अपने कर्तव्य की अनुचितता ईश्वर पर थोपना कहां की सभ्यता है। जिस वेदरक्षा को आप अपना धर्म बताते हैं यदि आपकी रक्षा का यही लक्षण है तो अरक्षा का क्या लक्षण होगा। इसमें आप पर आक्षेप करना हमारी ही मूर्खता है कारण कि सम्प्रति जिस गद्दी पर आप विराजमान हैं वहां की धर्मधारा में तो हिंसा का अर्थ रक्षा माना जाता है बलि आदि व्यवहारों से विदित ही है। इसी प्रकार यदि आप अपनी अरक्षा का नाम रक्षा रक्खें तो आश्चर्य नहीं आपके मन्तव्यानुकूल विहित ही है।

[ उक्तिः ]

वर्तमान सांसारिक व्यवहारों में बहुत से विषय इस प्रकार के हैं जो वेदमूलक होते हुए भी वेदानभिज्ञों को वैदिक प्रतीत नहीं होते इसीलिये उनको स्पष्टरूपेण प्रकट कर देना ही हमारा इस समय में परम कर्तव्य है।

[ प्रत्युक्तिः ]

जो कुछ आपने प्रकट किया है वह तो देख लिया जो आगे प्रकट होगा वह देखा जायगा। सम्प्रति यह कहना कि वेदमूलक कार्य्य स्पष्ट रूपेण नहीं होते उभयपक्ष के लिये ही ठीक है। आपकी ओर भी सभी कार्य्य वेदाज्ञानुकूल नहीं होते।

[ युक्तिः ]

वेद का लक्षण

विद् ज्ञाने १ विद् विचारे २ विद् सत्तायाम् ३ विद्लृ लाभे ४ इन चार धातुओं से वेद शब्द बनता है। इसलिये जिसमें ज्ञान विचा-

मान हो विचार पूर्वक जिसमें शब्दरचना हो अनादि काल में जिसकी सत्ता ( अस्तित्व ) हो और जो प्राप्त भी हो सके। उस को वेद कहते हैं।

[ प्रत्युक्तिः ]

यद्यपि आपके किये वेद के लक्षणों में शब्दार्थ में कुछ कहा जा सकता है। तथापि लेख बढ़ जाने के भय से आप के किये लक्षण को हम भी ज्यों का त्यों माने लेते हैं आपके किये लक्षण के मान लेने में कुछ आपत्ति भी प्रतीत नहीं होती

[ उक्तिः ]

( अलौकिकार्थप्रतिपादको वेदः )

ऐसा वेदका लक्षण सायण ने किया है। अलौकिक विलक्षण लोकोत्तर मनुष्यकल्पनातीत विषयों का मनुष्यसृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों के लिये प्रतिपादन करना केवल वेद का ही काम है। अन्य ग्रन्थ का नहीं इसलिये ये लक्षण सर्वांश में उपयुक्त प्रतीत होता है। कोई कोई आचार्य ( अपौरुषेयं वाक्यं वेदः ) ऐसा भी वेद का लक्षण करते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि जब ( सहस्रशीर्षा पुरुषः। पुरुष एवेदम् सर्व्वम्। तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्व्वम् ) इत्यादि मन्त्रों में ईश्वर का नाम पुरुष आता है और यजुर्वेद के एक सूक्त का नाम ही पुरुषसूक्त है। तब वेद अपौरुषेय कैसे कहा जा सकता है।

[ प्रत्युक्तिः ]

यह हम पूर्व लिख चुके हैं कि हमें आपकी व्यक्तिविशेष से कुछ

द्वेष नहीं। हमें तो अपने मन्तव्यानुकूल वेद पर आने वाले दोषों को हटाना इष्ट है। चाहे उसका कर्ता कोई व्यक्ति हो। वेद की अलौकिकता का किया उक्त लक्षण आपकी उक्ति हो वा सायणाचार्य्य महाशय की हो वेद के गौरव को रक्षार्थ हो हमें उसके मानने में कुछ आपत्ति नहीं। यद्यपि अलौकिक शब्द के अर्थ यह भी हो सकते हैं कि लोक नाम है रचना विशेष वाले संसार का जैसे यह रचना देशकालानुसार अपने स्वरूपों का परिवर्तन करती रहती हैं; वेद का स्वरूप नहीं बदलता सदा एक रस है। दूसरे अलौकिक शब्द के अर्थ उलटे के भी हैं। जिसका तात्पर्य है कि लोक से उलटा लोक का ज्ञान अंधकार का प्राप्त कराने वाला है और वेद का उपदेश प्रकाश रूप है प्रकाश अंधकार से उलटा है ही। तथापि हमें आपके किये लक्षणों के मानने में वेद गौरव में क्षति होने की सम्भावना नहीं आपके किये लक्षणों को भी अविकल रूप से मान लेते हैं। परन्तु आपके इस कथन में कि कोई वेद को अपौरुषेय कहते हैं यह ठीक नहीं अपने कथन की पुष्टि में आपने वेद की श्रुति प्रमाण में देकर अपने कथन की पुष्टि की तो भी हमें इसमें इतना कहना अवश्य प्रतीत होता है कि आपने वेद को अपौरुषेय कहने वाले पुरुष के भावपर दृष्टि न दे वृथा ही लाञ्छन लगाया कारण कि वेदको अपौरुषेय कहने वाले महानुभाव का भाव यह था। कि ईश्वर को भी पुरुष कहते हैं और जीवको भी पुरुष कहते हैं। किन्हीं को जीव संज्ञक पुरुष में वेदका कर्तृत्व न होजाय इससे उनका यह कथन वृथा नहीं किसी अंश में ठीक ही है। इस कथन कर्ताका भाव एक भारी भ्रांति को हटाने के अर्थ फिर ठीक न कहना अपनाही अज्ञान है। आप अपनी ही ओर निहारिये आपने अपने लेख में स्पष्ट लिखा है कि अथर्ववेद के दश काण्ड अथर्वा के बनाये हैं और दश अंगिरा के क्या इससे यह सिद्ध नहीं

होता कि अथर्ववेद दो ऋषियों का बनाया हुआ है। वेद को अपौरुषेय मानने वाले के कथन का खण्डन कर आप स्वयं तो वेदाचार्य बन बैठे, वेदों को ऋषिकृत बताते क्या आप की यह बुद्धि रसातल को चली गई थी। इससे इस महानुभाव का कथन ठीक है वेद में लोक के पुरुषों का कर्त्तव्य कुछ नहीं वेद ब्रह्म का कथन है। और आपका ऐसे मन्तव्य पर लाञ्छन देना महापाप है। कहते समय अगाड़ी पिछाड़ी दोनों का ध्यान करलिया करो अगाड़ी खोली तो पिछाड़ी बंधी रह गई और पिछाड़ी खोली तो अगाड़ी बंधी रह गई इस प्रकार भागना कठिन हो जाता है।

## [ उक्तिः ]

वेद का कर्ता कौन है

इस विषय में प्राचीन विद्वानों का बड़ा मतभेद है। ब्राह्मण ग्रंथों में इस विषय का अनेक प्रकार से वर्णन मिलता है। इस विषय पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है।

**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छंदांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत। ३१।७**

इस मन्त्र में ऋग्यजुःसाम इन तीन वेदों का और छंदांसि इस पद से गायत्र्यादि सात छन्दों का कर्ता यज्ञ माना है ( और यज्ञो वै विष्णुः ) इस शत पथ के प्रमाण से यज्ञ शब्द का अर्थ विष्णु होता है। इसलिये ऋगादि तीन वेदों का और गायत्र्यादि छंदों का आविर्भावक विष्णु माना गया है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

प्रथम तो इस प्रकार के लेखों को लिख कर ग्रन्थकर्ता ने सिवाय अपना पाण्डित्य बघारने के और कुछ नहीं किया। कारण कि इन

विषयों पर तो आर्यसमाज के जन्म काल से ही विवाद होता चला आता है अब इस प्रकार के लेख पिष्टपेषणवत् हैं। चाहे मनुष्य शय्या पर सरहाने की ओर से सोये वा पातीं की ओर से श्रोणी भाग बीच ही में रहैगा। यह एक लोक की कहावत है। इस विषय पर आप चाहे जितना लेख चलाओ वेदका कर्ता ब्रह्म ही रहैगा यज्ञ शब्द से चाहे विष्णु का ग्रहण करो वा केवल यज्ञ शब्द का ही ग्रहण करो अर्थ दोनों का ब्रह्म है जहां२ सृष्टिकर्तृत्व अर्थ और वेदोपदेश का ग्रहण होगा, वहां विष्णु शब्द से ब्रह्म का ही ग्रहण रहैगा अन्य स्थानों पर प्रकरणानुसार ग्रहण हो इसमें हमारी क्या हानि यह आप की भ्रान्ति है। शतपथ ने भी यज्ञ शब्द से विष्णु का ग्रहण शब्दार्थ को सरल करने के अथ किया है। वेद का कर्ता ब्रह्म है। यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। इसमें आपको आक्षेप रोग के लक्षण दिखाने की आवश्यकता नहीं। अपना हो वा अन्य का काल-यापन करना मूर्खता है यह तर्क नहीं कहलाता प्रत्युक्त कुतर्क है ( प्रतिपादितस्यार्थस्य विपरीतग्रहणं कुतर्कम् ) सिद्ध हुए सिद्धान्त में तर्क करना कुतर्क ही है विद्वत्ता के पदाधिकारियों को ऐसा कर्तव्य शोभा नहीं देता किमधिकम्भुत्सु।

## [ उक्तिः ]

### अग्नेॠग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः

शतपथ के इस वाक्य से अग्नि वायु सूर्य इन तीन देवताओं से ऋगादि तीन वेदों का आविर्भाव मिलता है परन्तु चौथा अथर्व कहां से उत्पन्न हुआ इसका इसमें कुछ वर्णन नहीं है। ( अथर्वणां चन्द्रमा दैवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छंदांसि आपः स्थानम् अद्भ्यः स्थावरजंगमो भूतग्रामः संभवति ) गोपथ के इस प्रमाण से जिस प्रकार ऋगादि तीन वेदों के देवता अग्नि आदि बतलाये गये हैं।

इसी प्रकार अथर्व का देवता चन्द्रमा बतलाया गया है। अर्थात् चन्द्रमा से अथर्ववेद प्रकट हुआ। यह सिद्ध होता है। गोपथ में ( चन्द्रमा वै ब्रह्मा ) ऐसा भी पाठ मिलता है। इसलिये ही अथर्व का दूसरा नाम ब्रह्मवेद भी कई स्थलों में आता है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

यह हमने पूर्व कई बार कहा है कि ग्रन्थकर्ता ऐसे विषयों से केवल कालयापन करते हैं न तो किसी विषय को मूल से उठा कर सिद्ध करना अपना इष्ट रखते हैं और न कथन ही प्रकरण बद्ध प्रतीत होता है। साथ ही में शब्दों का प्रयोग ऐसा करते हैं कि जिस एक से कई २ अर्थ निकलें। कहीं लिखते हैं कि अमुक पर आविर्भाव हुआ दूसरी जगह कहते हैं कि अमुकवेद का कर्ता अमुक पाया जाता है कर्ता शब्द से तात्पर्य तो रचना से प्रत्यक्ष ही विदित है। आविर्भाव के अर्थ प्रकाश के हैं किस शब्द पर व्याख्या चलाई जाय मूल पकड़ कर बात न करना और शब्दों को छलरूप से रखना यह सिद्ध करता है कि ग्रन्थकर्ता का अपना निश्चय भी डामाडोल है। यह एक प्रकार का वितण्डावाद है न तो अपने ही पक्ष की स्थापना है और न दूसरे के ही किसी एक मन्तव्य को पकड़ कर सिद्धान्त जमाया जाय तो कथन भी चले। पूर्वमन्त्र से तो यह बताया कि चारों वेद का कर्ता शतपथ विष्णु को बताता है इतना कह कर यह न बताया कि हम विष्णु अमुक व्यक्ति को मानते हैं। अब आप यह सिद्ध करने को उद्यत हुए हैं कि वेदों का प्रकाश तीन देवताओं पर हुआ है। इस प्रकार के असम्बद्ध और सिद्धान्त से रिक्त लेखों से यह विदित होता है कि जहां वेदों का नाम देखा वहीं से लेख उद्धृत कर लिया समझे समझाये कुछ नहीं। ( अग्नेर्ऋग्वेदो ) इस शतपथ के लेख

से स्वामी जी महाराज ने तो यह ग्रहण किया है कि अग्नि नामक ऋषि पर ऋग्वेद प्रकाशित हुआ और वायु नामक ऋषिपर यजुर्वेद एवम् सूर्य नामक ऋषिपर सामवेद इसीका साक्ष्य मनुदेता है ( अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ) अग्नि वायु और रवि से सनातन वेद को ब्रह्माने पूर्ण किया। आप इन को देवता नाम से पुकारते हैं। शतपथ की इस प्रतीक पर और वेदों का गम्भीर भावसे अन्वेषण करने पर यह विदित होता है कि यह प्रतीक और मनु का कथन वेद के रहस्य को सरलता से जानने के अर्थ एक भारी भाष्य रूप हैं। इस प्रतीक से शतपथ और मनु यह बताते हैं कि वेदों में तीन तत्व विशेषों का कृत्य बाहुल्येन पाया जाता है। अग्नि जल और वायु इन तत्वों के चार भाग किये गये हैं। जल और वायु का तो एक ही एक भाग है अग्नि के दो हैं। एक पृथिवी से संबंध रखने वाला भौतिकाग्नि और दूसरा द्युलोक संबंधी सूर्य्याग्नि, भौतिकाग्नि का संबंध ऋग्वेद से है ऋग्वेद का प्रकाश करानं वाला वायूं कहो कि ऋग्वेद द्वारा भौतिकाग्नि का वर्णन विशेष है। एवम् यजुर्वेद का प्रकाशक वा वायु का विशेष वर्णन यजुर्वेद से है। द्युलोक के सूर्य्याग्नि का वर्णन विशेषता से सामवेद में है। चौथे जल के गुण व्यवहार कार्य का आधार अथर्व है। तत्व जड़ हैं उनमें ज्ञान नहीं इस से ज्ञानमय होने से वेद का कर्ता ब्रह्म है। ऋषि मानकर इनका ग्रहण करो तब भी यही अर्थ होता है और अपना मन प्रसन्न करने को देवता कह कर प्रयोग करो तो भी अर्थ यही रहैगा। उत्पत्ति अर्थ में पञ्चमी है जो बहुत अर्थों में आती है। परन्तु मुख्य अर्थ पञ्चमी का हेतु है। हेतु स्वयं कर्ता नहीं होता हेतु से कर्ता कार्य्य किया करता है। मुख्य रूप से सृष्टि की रचना के ये उक्त तत्व ही हेतु विशेष हैं। उन्हीं का चारों वेदों में प्रकाश किया गया है कर्ता वेदों का ब्रह्मही है अन्य नहीं। हमारे

कथनानुसार ठीक २ विचार करने से आपके चौथे मन्त्र की जिसमें आपने चन्द्रमा को अथर्व का प्रकाशक बताया है कैसी ठीक २ संगति मिली, जल का विशेष संबंध चन्द्रमा से है इसलिये उसका देवता चन्द्रमा है। चन्द्रमा को ब्रह्मा भी इसीलिये कहा है कि उत्पत्ति का कारण जल है वह चन्द्रमा की शक्ति विशेष में है आपके पुराणों में भी उत्पत्ति का भार ब्रह्मा पर ही माना गया है। यदि और गम्भीर विचार करके देखा जाय तो चन्द्रमा-ब्रह्मा और सूर्य्य विष्णु वायु रुद्र यही तीन शक्ति विशेष हैं जो ब्रह्म की सृष्टि का कार्य करती हैं ब्रह्म इनका नियामक है। इनहीं को न समझ पुराणों में अनेक कल्पना कर डाली हैं। ब्रह्मा का वर्ण श्वेत है वह चन्द्रमा में ही घटता है विष्णु का वर्ण श्याम यह सूर्य में प्रतीत होता है वायु का रूप रुद्र है, इसी आशय को ग्रहण कर शरीर में मनको ब्रह्मा बुद्धि को विष्णु और सर्व शरीर का रक्षक तथा विनाशक वायु रुद्र रूप है। जहां जितना प्रपञ्च देखा जाता है सब वेदों के कथन के आधार पर है आपका अभिप्राय किसी प्रकरण से भी सिद्ध नहीं होता हो कैसे कोई अभिप्राय होतो सिद्ध हो क्रीड़ा मात्र लेखों से अर्थ सिद्धि नहीं हुआ करती। शतपथ का वचन और उस कथन का साक्ष्य मनु का वचन वेदों को कितना सरल करते हैं। इस प्रकार वेदों का मर्म जानने से भाष्य में कितनी सुगमता होना सम्भव है। वेदों के इन भावों पर विचार करने से वेदों का महत्व हस्तगत होता है। सज्जनों को आनन्ददायक है। आपको अभी यह भी पता नहीं कि वेदों का कर्ता कौन है नृत्य करना न जानने वाला आगन को टेढ़ा बता अपना दोष हटाता है वेदों के मर्म को समझते तो वृथा क्यों इधर उधर घूमकर वेदों में दोष निकालते। दोष तो दोष वाले में ही होगा शुद्ध में दोष कहाँ? वेदों का कर्ता केवल ब्रह्म है अन्य नहीं यही आपको भी मानना योग्य है।

[ उक्तिः ]

तस्य हवा एतस्य गवतोऽथर्वणऋषेरथर्वणो वेदोऽभवत्।
दशतयानाथर्वणऋषीन्निरमिमत, एकर्चान् दशर्चानिति
दशतयानाथर्वण आर्षेयान् निरमिमत एकादशान् विंशान्
इति अथर्वणोयान् मन्त्रानपश्यत्स आथर्वणो वेदोऽभवत्

गोपथ के इन वाक्यों में अथर्वण ऋषिसे अथर्ववेद का बनाया जाना लिखा है। इसीलिये इनका नाम अथर्वणवेद पड़ाहै। एक मन्त्रात्मक सूक्त से लेकर बीस मन्त्रात्मक सूक्त तक जितने सूक्त अथर्ववेद में मिलते हैं। वह सब अथर्वण ऋषि के बनाए हैं इसी लिये —

आथर्वणानां चातुर्ऋचेभ्यः स्वाहा १ विंशति स्वाहा। १७ तृचेभ्यः स्वाहा १६ एकर्चेभ्यः स्वाहा । २० ब्रह्मणे स्वाहा २६

इस प्रकार के मन्त्र अथर्वकाण्ड १६-२३ में मिलते हैं।

[ प्रत्युक्तिः ]

इस पाठ को जो ग्रन्थकर्ता ने अथर्वण वेद को अथर्वाऋषि कृत होने में दिया है गोपथ का बताया है वस्तुतः है भी यह पाठ गोपथ ही का, परन्तु दिया इस ढंग से है कि पाठ में शब्दों का भेद पाया जाता है यह तो हम पूर्व से कहते चले आते हैं कि पाठ तथा शब्दों में काट छांट कर डालना ग्रन्थकर्ता के वामहस्त की क्रीड़ा है। हमें तो यहां यह विचार करना है कि ग्रन्थकर्ता ने

जिस गोपथ के पाठ से अथर्व को ऋषि बताया और उसके द्वारा अथर्ववेद का रचा जाना कहा है, वह कौन व्यक्ति है ? ग्रन्थकर्ता का कथन है कि अथर्वा ऋषि का बनाया आधा वेद है ? आधा अंगिरा ने बनाया है। हमें यह दिखाना है कि ये अथर्वा और अङ्गिरा कौन थे गोपथ ब्राह्मण की व्याख्या से इनका क्या पता चलता है ? यह लेख यदि लम्बायमान हो जाय तो पाठक क्षमा करें विनो मूल गोल माल कह डालने से भी अर्थसिद्धि नहीं होती इसस सविस्तर कहना ही अच्छा है। इसमें हम इतना तो कर सकते हैं कि गोपथ का संस्कृत भाग न देकर केवल गाथामात्र से आशय कहते हैं। यदि किन्हीं को देखना इष्ट हो तो गोपथ में देखलें। इसमें एक यह भी कारण है कि केवल भाषा वालों को संस्कृत पाठ कुछ कार्य्य भी नहीं देगा संस्कृतज्ञ वहां देख ही लेंगे इससे संस्कृत पाठ उपयोगी प्रतीत नहीं होता केवल भाषा ही दोनों पक्षों को कार्य्यसाधक होगी। गोपथ ब्राह्मण ने सृष्टिरचना का आरम्भ जल से माना है। इसी आधार पर मनु ने भी जल से ही सृष्टि होना कहा, प्रतीत होता है। गोपथ में जलके चार भाग करके चार ही नामों से उच्चारण भी किया है। जल का एक भाग तो खारा होने से अपेय कहा गया है। उसका नाम आप रक्खा है। जल को दूसरी संज्ञा में शुद्ध और पेय माना है। इस शुद्ध जल के तीन नाम हैं भृगु अङ्गिरा और अथर्व इन तीनों में भृगु के द्वारा अथर्वा और अङ्गिरा नाम वाले जल की उत्पत्ति कही है इन तीनों प्रकार के जलों की समस्त द्युलोक में तथा दिशाओं में प्राप्ति है। चारों दिशाओं के पवन उष्ण शीत इन्हीं तीन प्रकार के जलों द्वारा माने गये हैं। सब स्थानों पर प्राप्ति होने से ही जल की आप और ऋषि संज्ञा है। भृगु संज्ञा वाले जल की अत्यन्त सूक्ष्मता तथा उत्तमता बताकर अथर्ववेद में अथर्वा और अङ्गिरा का कार्य्य विशेष कहा गया है। इसी हेतु से अथर्व का

विशेष सम्बन्ध होने से उस वेद का नाम अथर्वण पड़ा अर्द्ध भाग में अङ्गिरा संज्ञा वाली जल शक्ति का वर्णन है। इतना भाग अङ्गिरा सम्बन्धी है दोनों भाग मिलने से अथर्वाङ्गिरस नाम भी कहा या माना गया। गोपथ ब्राह्मण की गाथा को देखने से ये न तो कोई शरीरधारी गर्भ से उत्पन्न होने वाले ऋषि हैं और न कोई राजा महाराजा हैं। ये तो जल की शक्ति विशेषों की संज्ञा हैं। ऐसा गोपथ बताता है। ग्रन्थकर्त्ता स्थूल विचार से कार्य्य लेते हैं यही कारण है कि पद २ ठोकर खाना पड़ती है। इसी से पाठकगण उन श्रुतियों का भी तत्व निकाल लें जो ग्रन्थकर्ता ने स्वाहा शब्द करके वेद की बताई हैं। प्रथम तो (छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्) वृक्ष को जड़ से काटने पर शाखा पत्र स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार जब ग्रन्थकार के लगाये वृक्ष की जड़ ही कट गई फिर इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली शाखा रूप बात और पत्र यदि कोई आगया हो तो कच्चा पक्का फल भी नष्ट हो गये। यह विषय बहुत सूक्ष्म है इस पर सामान्य विचार वालों की बुद्धि का प्रवेश होना कठिन है। चारों वेदों की प्राप्ति ब्रह्म से ही जनता को हुई है अन्य व्यक्तियों द्वारा बताना वेदों के गौरव में बट्टा लगा स्वयं पाप अपने शिर धरना है। ग्रन्थकर्ता को इसका ध्यान न रहा इसमें तो उनकी ही बुद्धि का दोष है वही भोगेंगे (कर्ता दोषेण लिप्यते। अब भी सावधानी से कार्य्य लो मनुष्य जन्म को वृथा खोना विद्वत्ता नहीं, सत्यभाषण से लोक तथा परलोक दोनों में प्रतिष्ठा होती है, कार्य्य विचार कर करो जिससे पीछे पछताना न पड़े।

[ उक्तिः ]

दशतयानामंगिरस आर्षेया त्वेरमिमत षोडशिनोष्टा-

दशिनो द्वादशिन एकर्चान्सप्तर्चान्इति तस्माद्धिंशोनोंगिरस ऋषीन्निरमिमत तेभ्यो यान् मन्त्रान पश्यत्स अङ्गिरसो वेदो अभवत्।

गोपथ के इन वाक्यों से ब्रह्मा के तृतीय पुत्र अङ्गिरा ने अथर्व वेद के कई भागों का सम्पादन किया है। इसी लिये इसका नाम आङ्गिरस पड़ा—१६-१८ १२। १-२-३-४-५ ६-७ मन्त्रवाले जितने सूक्त हैं ये सब अङ्गिरा ऋषि के बनाये हुये हैं अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति हुआ। अङ्गिरसो नामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा १ सर्वेभ्यो ङ्गिरोभ्यो विद् गणेभ्यः स्वाहा। १८ षष्ठाय स्वाहा २ ऋषिभ्यः स्वाहा १४। (उपोत्तमेभ्यः स्वाहा। ११ प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा। ८)

इस प्रकार के मन्त्र अथर्वकाण्ड १६–२२ में मिलते हैं और (बृहस्पति अंगिरसः) ११-१० यह मन्त्र भी अथर्ववेद में आता है जिस समय ये ऋषि हुए उसी समय अथर्ववेद बना और दो ऋषियों ने मिलकर इसे बनाया यह निर्विवाद है।

## [प्रत्युक्तिः]

ग्रन्थकर्ता के इस लेख का उत्तर हमारे पिछले कथन में पर्याप्त रूप से आगया हम इसे लिखते भी नहीं इसमें इतना विषय विशेष आगया है कि वेदकर्ता ने अथर्व और अङ्गिरानाम वाली जल की शक्तियों का विवरण बहुत उत्तमता से किया है उसको दिखादें इस में बताया है कि इतनी इतनी ऋचाओं वाले सूक्त अमुक शक्ति का वर्णन करते हैं एक के कहने से शेष भाग स्वयं ही विदित हो जाता है। ग्रन्थकर्ता अपने को पण्डित बताते हैं पंडितभी सामान्य नहीं कविरत्न उपाधि साथ में है और अथर्ववेदालोचन रच कर और वेदत्रयी का विज्ञापन देकर अपने को वेदों का भी धुरंधर पण्डित बता रहे

हैं। परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि आप हृदय पलट के चक्षुओं को खोल कर कार्य्य नहीं करते। मन्त्र में ( आपेयात् ) पंचमी पड़ी हुई है जिसको हम हेत्वर्थ में बता चुके हैं अङ्गिरा हेतु है न कि स्वयं करता परन्तु ग्रन्थकर्ता उसको कर्ता ही बनाने का राग अलाप रहे हैं। आगे पदों में स्पष्ट आया है कि ( यान् मन्त्रानपश्यत् ) यदि मन्त्र पूर्व विद्यमान नहीं थे तो अथर्वा और और अङ्गिरा ने देखा किन्हें। यदि देखने वाले ही ग्रन्थकर्ता के मन से मन्त्रों के निर्माता हैं तो ( ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः ) यह निरर्थक होकर समस्त वेद ही ऋषियों का बनाया रह जायगा ब्रह्म का कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता ( तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ) यह यजुर्वेद का मन्त्र असत्य रहा। यह सब ग्रन्थ कर्ता की भ्रान्ति है स्थूल विचार का फल है। इस प्रकार का साहस अपने तथा जनता दोनों ही के नाश का कारण है। ऐसे महा पापों से स्वर्ग की वा लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करना भारी भूल है इन्हीं करतूतों से द्विजगण को अपना कर उनके मुख को भी मसि लगाना चाहते हो धन्य है आपके इस असत्य साहस को कृपा कीजिये यदि ये विचार विना प्रकट करे नहीं रहा जाता तो लोक को त्याग कंदराओं में जाकर पाषाणों को सुना हृदय का दाह मिटाओ जनता पर कृपा करो।

## ( उक्तिः )

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः। अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः। द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः दिशो धेनवस्तासां चन्द्रोवत्सः। ४। २६। २। ४। ६। ८ अथर्व

इन मन्त्रों में अलंकार रूप से पृथिवी अन्तरिक्ष द्यूलोक और दिशाओं को धेनु माना गया है। और अग्नि वायु आदित्य

चन्द्रमा को बछड़ा माना गया है। ऋग्यजुःसाम अथर्व को दुग्ध बतलाया गया है। इसका विशेष वर्णन गोपथ में है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

विचारशील सज्जन तो सदा से वेदों के अनन्त ज्ञान का कर्ता ब्रह्म ही है कहते चले आते हैं। कारण कि कार्य के रहस्य को जैसा उसका कर्ता स्पष्ट कर सकता है अन्य नहीं कर सकता कार्य चाहे कर्ता ने अपनी सुघड़ता से कितना ही सुगम बनाया हो परन्तु फिर भी कोई न कोई अंश गूढ़ता को लिये ही रहता है वह बिना कर्ता के तीन काल में भी खुलना कठिन है इससे सज्जनों का विचार है कि यह रचना ब्रह्म के द्वारा रची गई है इसमें मनुष्यों का कर्तव्य लेश भी नहीं, ऐसा आस्तिक सदा से कहते वा मानते चले आये हैं। इसके समस्त रहस्यों का प्रकट करने वाला भी ब्रह्म ही हो सकता है। यह प्रकाश वेद में पाया जाता है इस हेतु विशेष से वेद का कर्ता ब्रह्म ही हो सकता है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य को बताना विचारशून्यता है। इसी उक्त मन्त्र द्वारा जो रहस्य खोला गया है उसको ग्रन्थकर्ता ने तो क्रीड़ा मात्र समझ रख दिया है। यह नहीं समझा कि यह तो मेरे पिछले कथन के अर्थ झाड़ है। इतनी विचारशक्ति तो तब होती जब कि हृदय पटल के चक्षुओं से कार्य लेते। मन्त्र बताता है कि पृथिवी गोरूप है इसके गर्भ में अग्निरूप बछड़ा है। एवं आकाश गौ है तो उसके गर्भ में वायु है वत्स द्युलोक रूप गौ का बछड़ा सूर्य है दिशा रूप गौओं का वत्स चन्द्रमा है। इन उक्त स्थानों में अमुक अमुक की उत्पत्ति वा कार्य्य विशेष है। इस धेनु और इससे प्राप्त वत्सों से एक एक वेद रूप दुग्ध निकाला गया है गौरूप पृथिवी के वत्स से ऋग्वेद एवम्

यजुः अन्तरिक्षरूप धेनु के वायु रूप बछड़े से। द्युलोक रूप गौ के सूर्य्यरूप वत्स से साम दिशारूप गौ के जल रूप बछड़े से अथर्व अर्थात् इन ४ स्थान विशेषों की उत्पत्ति स्थिति तथा गुणों का वर्णन वेदों में इसी क्रम से है। प्रकरण और विषय विदित होने से ग्रन्थ का ज्ञान कितना सुगम हो जाता है, कूटकूट रूप छन्द में अच्छे वैयाकरण और कविरत्नों की मिट्टी कुटा करती है। परन्तु भेद खुलने पर बालक भी उसे आश्चर्यचकिता रूप से कहने लगते हैं। क्या कूटकूट का भेद बिना उसके रचयिता के कोई अन्य बता सकता है कदापि नहीं। इसी प्रकार अलग्वार मन्त्रार्थम् अर्थ को कहने वाले वेदों का रहस्य कितनी उत्तमता से उसके कर्ता ब्रह्म ने खोला है। इसे न विचार अज्ञानतासे परिपूर्ण कथन कहनेको उतारू हो जाना अपना गौरव अपने हाथ से मिट्टी में मिलाना नहीं तो और क्या। बस कृपा करो।

## [ उक्तिः ]

(ऋग्वेदस्य पृथिवी स्थानम्। अन्तरिक्षस्थानो अध्वरः द्यौस्थानं सामवेदस्य आप भृग्वंगिरास्मृतम्) इस मन्त्र में ऋग्वेद का स्थान पृथिवीलोक यजुर्वेद का अन्तरिक्ष सामवेद का द्युलोक और अथर्व का स्थान जललोक कहा गया है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

इस मन्त्र को भी क्रीड़ार्थ ही ग्रन्थकर्ता ने उद्धृत किया है। यह बात विचारशील सज्जनों को विदित हो कि विद्वानों की विघ्न अज्ञानियों की क्रीड़ा ही होती है। मन्त्र का अर्थ पिछले मन्त्र से ही सम्बन्ध रखता है। अर्थ बहुत सरल है मन्त्र ने यह बताया कि भौतिकाग्नि का रहस्य बताने वाला ऋग्वेद है और वायु के कार्य्यों

का यजुर्वेद जानो, सूर्य के समस्त कृत्यों का भेद सामवेद से प्रकाशित होगा, जलके अखिल कार्य्यों का बताने वाला अथर्व है। यदि इन लोकों का ज्ञान विशेष करना हो तो अमुक २ वेद के अनुष्ठान से होगा।

## [ उक्तिः ]

( अग्निर्दैवतमृग्वेदस्य यजुर्वेदो वायुदैवतः।
आदित्यः सामवेदस्य चन्द्रमा भृग्वंगिरसाम्॥२॥

इस मन्त्र में ऋग्वेद का देवता अग्नि; यजुर्वेद का वायु, सामवेद का आदित्य और अथर्व का देवता चन्द्रमा कहा गया है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

मन्त्र बहुत सरल है और आशय भी यही है कि अमुक २ वेद में अमुक २ का प्रकाश किया गया है। इस प्रकार विचार करने से वेदों का वेदार्थ सम्यग्तया हस्तगत होगा, देवता शब्द आजाने से मन्त्रों के कर्ता सिद्ध नहीं होते।

## [ उक्तिः ]

वागध्यात्ममृग्वेदस्य यजुषां प्राण उच्यते
चक्षुषी सामवेदस्य मनो भृग्वंगिरांसम्॥ ३ ॥

ऋग्वेद का अध्यात्म वाणी, यजुर्वेद का प्राण, साम के दोनों नेत्र और अथर्व का मन कहा गया है। इसका विशेष वर्णन छान्दोग्य में मिलता है। अथर्ववेद के निर्माताओं में भृगु ऋषि ने भी स्थान पाया है। इसीलिये इसका नाम ( भृग्वंगिरस ) भी मिलता है।

## [ प्रत्युक्तिः ]

अध्यात्म शब्द के अर्थ हैं जो सर्वदा गति वाला हो वह आत्मा और उसको अधिकृत कर के जो कार्य किया जाय वह अध्यात्म है। ऋग्वेद में वाणी का अधिकार विशेष है, यजुर्वेद में प्राणों का, सामवेद में नेत्रों का, अथर्व में मनका, ऋग्वेद को वाणी का देवता कहा है इस पर विचार करने से एक अद्भुत रहस्य हस्तगत होता है। तात्पर्य इसका यह है कि वाणी को दो कार्य्यों का करने वाला आयुर्वेदवेत्ताओं ने बताया है। भाषण करना और रसों का ज्ञान करना वाणी का कार्य है। रस का अनुभव दो गुणों की शक्तियों से जिह्वा करती है पार्थिवाग्नि से और जल से, इन दोनों तत्वों का समावेश जिह्वा में है इसी अग्नि का वर्णन ऋग्वेद करता है इस से ऋग्वेद का देवता वाणी भी है यहां देवता शब्द के अर्थ क्रीड़ा के हैं। अर्थात् जिह्वा ऋग्वेद के प्रतिपादित भौतिकाग्नि द्वारा उत्पन्न हुए पदार्थों का स्वाद जानकर आनन्द होती है उनमें रमण करती है क्रीड़ा करती है कारण कि देवता शब्द वा देव शब्द ( दिवु ) धातु से बने हैं धातु के क्रीड़ा विजिगीषा स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गति इतने अर्थ हैं जहां जैसे अर्थ घटते हों वहां उसी प्रकार प्रयोग करना योग्य है। पदार्थों में रसगुण जल का और पार्थिव भाग वाले अग्नि का होता है। ऋग्वेद से ये दोनों कहे गये हैं। अङ्गिरा नाम जल का पूर्व सिद्ध हो चुका है इसीलिये ऋग्वेद को भृग्वंगिरस यदि कहा जाय तो क्या चिन्ता है होना ही योग्य है। आपके मन्तव्यानुसार तो भृग्वंगिरस कहने से यह सिद्ध होता है कि ऋग्वेद के कर्ता भी दो ही हैं। ब्रह्म किसी वेद का कर्ता है ही नहीं सो नहीं यही सिद्धान्त अटल है जो हम बता रहे हैं विचारशीलों के चित्त को आकर्षण करने वाला है आप यदि यह रहस्य बताते तो बलात् सब को मानना पड़ता। क्यों न सत्य

कहा यदि सत्य कहते तो यह कहने का अवसर क्यों आता कि हमारी बात नहीं मानते।

[ उक्तिः ]

ऋचो विद्वान् पृथिवी वेद सम्प्रति यजुषो विद्वान् बृहदन्तरिक्षम्। दिवं वेद सामगो यो विपश्चित् सर्वान् लोकान् यद् भृग्वंगिरोवित्।

इस समय में ऋग्वेद का ज्ञाता पृथिवी की बातों को यजुर्वेद का ज्ञाता बड़े अन्तरिक्ष की बातों को, सामवेद का ज्ञाता द्युलोक की बातों को और अथर्व का ज्ञाता सबलोक की बातों को जान लेता है।

[ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता ने अर्थों में सम्प्रति शब्द के वही अर्थ करें हैं जो काव्यों में आये हैं। यह ध्यान नहीं किया कि इस स्थान पर सम्प्रति के अर्थ वर्तमान कालके करने से यह दोष आता है क्या इसी समय के ऋग्वेद के ज्ञाता पृथिवी के भेदों को जानते हैं पूर्व के ऋग्वेद ज्ञाताओं को पृथिवी का रहस्य नहीं खुला वा आगे होने वालों को भेद नहीं खुलेगा। इत्यादि कारणों से सम्प्रति शब्द के अर्थ वर्तमान काल करना उचित नहीं, सम्प्रति अव्यय दो अर्थों में आता है। (साम्प्रतम् सम्प्रति युक्तवर्तमानार्थयोः) यहां युक्त अर्थ करना संगत है। अब अर्थ इस प्रकार होगा कि ऋग्वेद युक्त पृथिवी और यजुर्वेद युक्त अन्तरिक्ष एवं साम वेद युक्त द्युलोक को अच्छी प्रकार जान सकता है अथर्व करके युक्त चारों लोकों की बातों का ज्ञाता

होता है कारण कि चारों दिशाओं का ज्ञान अथर्व से होता है चारों दिशाओं के व्यवहार जान लेने पर सब कुछ जाना जाता है। यह सिद्ध हो ही चुका है।

[उक्तिः]

यांश्च ग्रामे यांश्चारण्ये जपन्ति मन्त्राञ्नानार्थान्बहुधाजनासः। सर्वेते यज्ञा अंगिरसो यन्ति नूतना साहि गतिब्र ह्मणो याऽवराध्या ॥२॥

प्रत्यक्ष में चमत्कार दिखाने वाले अनेकार्थप्रद जिन मन्त्रों को ग्रामों में अथवा जंगलों में बैठ कर बहुधा मनुष्य जपा करते हैं वे सब अथर्व से ही निकले हैं यही ब्रह्मवेद की नूतनगति है।

[प्रत्युक्तिः]

ग्रन्थकर्ता के अथर्ववेद के अर्थ दिये प्रमाण न तो अथर्व के ही हैं और न अथर्व के ब्राह्मण गोपथ के हैं। परन्तु हैं उपयोगी इसीसे हमभी इनके मानने में नकार नहीं करते। केवल हमारे और ग्रन्थकर्ता के अर्थों में भेद है। ग्रन्थकर्ता ने अपने सिद्धान्त की पुष्टि के अर्थ जो अर्थ करे हैं उनमें बहुत गड़ बड़ भी नहीं केवल भेद इतना है कि ग्रन्थकर्ता ने जप शब्द से मरण मोहन उच्चाटन को सिद्ध करने का साहस किया है इस विषय में हमारा वक्तव्य है कि जप और जल्प दोनों धातु शुद्धोच्चारण अर्थ में भी हैं फिर यह अर्थ करने में क्या आपत्ति होती है कि लोक में वा जंगलों में जिस भाषा से मनुष्य परस्पर भाषण करते हैं वे शब्द अथर्व विशेष हैं तात्पर्य इस का यह है कि अथर्व वेद में लोक व्यवहार के शब्द कहावत आख्यायिका जिनका लोक में व्यवहार विशेष है अधिकता से हैं। लोक भाषा को उत्तमतया जानने के अर्थ अथर्व को अवश्य पढ़ना वा सुनना चाहिये अथर्व देखने से भी यह विदित होता है कि उसमें बड़े २ उपयोगी विषय हैं।

[ उक्तिः ]

त्रिविष्टपं त्रिदिवं नाकमुत्तमं तस्मेतथा त्रय्या विद्य-यैति। अत उत्तरे ब्रह्मलोका महान्तः अथर्वणामंगिरसां च सा गतिः ॥ं

त्रयीविद्या का जानने वाला तीन वेदों के आधार पर उत्तम स्वर्गलोक को जाता है। उससे भिन्न जो बड़े बड़े ब्रह्मलोक पितृ-लोक वरुणलोक आदि स्थान हैं उनमें केवल अथर्ववेद का प्रकाण्ड पण्डित ही जाता है अन्य नहीं इसीलिये हमने अथर्ववेद का अधिक स्वाध्याय किया है।

[ प्रत्युक्तिः ]

प्रथम तो जो कुछ प्रमाण ग्रन्थकर्ता ने अथर्ववेद के गौरवार्थ दिये किसी व्यक्ति विशेष के हैं। परन्तु हैं सब उपयोगी इससे उन को अविकल रूपसे मानना अनुचित भी नहीं। स्वामि दयानन्द योगिराज की भी यह आज्ञा है कि वेदानुकूल और युक्तियुक्त वाक्य सभी मन्तव्य हैं। केवल ग्रन्थकर्ता के और हमारे भावों में भेद है। ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय तो यह है कि वह स्वयं इन लोकों को प्राप्त हो और बहुत कालपर्य्यन्त वहां के आनन्दों को लूटे। और हमारा अभिप्राय है कि प्रभु की इस आश्चर्यान्वित रचनाके भेदों को परम पवित्र वेदों से जानकर इसी लोक और इसी देह में महान् आनन्द भोगे। यदि ग्रन्थकर्ता का भाव भी यही हो तो हमारा उनका कोई भेद नहीं। वेद ज्ञान है ही मनुष्यों के सुखार्थ।

निवेदन

पूर्व से हमने यही क्रम रक्खा है कि ग्रन्थकर्ता का कथन अवि-कल रूपसे दें और अबतक देते भी चले आते हैं। अब यह विचार हुआ कि इस प्रकार करने से प्रथम तो पुस्तक के लम्बायमान होने

का भय है जो पाठकों को नहीं रुचेगा। सम्प्रति पाठकों का विचार है कि कथन संक्षेप से हो। इसलिये अब यह विचार निश्चित किया है कि ग्रन्थकर्ता का संस्कृत लेख न देकर केवल भाषा लेख का सारांश दिया जाय। इस प्रकार से लेख न्यून हो जायगा यह पूर्व कह आये हैं कि भाषा जानने वालों को संस्कृत लेख उपयोगी भी नहीं। संस्कृतज्ञ संस्कृत भाग को संस्कृत ग्रन्थ से देख ही लेंगे हां ऐसा तो अवश्य होगा कि बहुत उपयोगी लेख का भाग कहीं कहीं दे भी दिया जायगा परन्तु मन्त्र भाग का क्रम जहां चलेगा वह भाग तो अवश्य देना होगा इसका पाठकगण ध्यान रक्खें। आपने अथर्ववेदालोचन ग्रन्थ के पृष्ट २२ पर कुछ भाग गोपथ के संस्कृत का देकर एक अनुपयोगी विषय को कहा है उसकी भाषा लिखते हैं।

## [ उक्तिः ]

जो यज्ञ विधिपूर्वक नहीं किया जाता वह सछिद्र नौका के समान नष्ट हो जाता है। जिस यज्ञ में ऋत्विजों का अपमान किया जाता है अथवा मन्त्र कल्प ब्राह्मण नहीं पढ़े जाते जिसमें दक्षिणा नहीं दी जाती अथवा जिसमें उत्पात होते रहते हैं। जिसमें भूतों का प्रायश्चित्त शान्तिपाठ नहीं होता उस यज्ञ का फल असुर गन्धर्व यक्ष राक्षस पिशाचों को मिलता है। इसीलिये अथर्ववेदज्ञ को यज्ञ में ब्रह्मा बनाना चाहिये। इसके आगे कहीं और का पाठ दिया है उसकी भाषा—प्रायश्चित शान्ति तथा औषधोपचार से देवताओं को प्रसन्न रखने वाले अथर्व वेदज्ञ ब्राह्मण श्रद्धा से यज्ञ में दीक्षित हो कर हवन करते हुए यज्ञ की रक्षा करते अन्त तक उस को पूराकर देते हैं। इसके आगे एक पद्यरूप संस्कृत है उसका अर्थ यज्ञ के चार पाद हैं इसीलिये उसको मन्त्र में चतुष्पात् कहा गया

है। वह चार पाद ऋगादि चार वेद हैं। जिसमें ऋग्वेद से स्तुति, यजुर्वेद से संस्कार, साम से विघ्नवन और अथर्व से रक्षा की जाती है वह यज्ञ सीधा द्युलोक को प्राप्त होता है यहां तक चार वेदों का महत्व दिखलाया गया है अब अन्य वेदों का भी वृत्तान्त पढ़िये।

## [प्रत्यर्कः]

इतना लेख पृष्ठ २२ से आधे २३ पर्यन्त है इसमें कोई विषय ऐसा प्रतीत नहीं होता जिस पर कुछ विशेष कहा जाय। यह पूर्व कह आये हैं कि ग्रन्थकर्ता का भाव स्थूल विचारों वाला होने से शब्दों के स्थूलार्थ को ग्रहण करता है। श्रीस्वामी दयानन्द यतिवर की कृपाकटाक्ष से लोक की पढ़ी तो पढ़ी अनपढ़ जनता भी यह जान गई कि यज्ञ द्विजातियों का परम कर्तव्य है। यज्ञ के द्वारा असाध्य कार्य भी सिद्ध होने सम्भव हैं। स्वामी दयानन्द के पूर्व यज्ञ शब्द का अर्थ यह ग्रहण होता था कि पूरी हलुवा बनाओ और स्वयं चट कर जाओ। इस कथन से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि संस्कृतज्ञों को यज्ञ के शाब्दिक अर्थ विदित नहीं थे परन्तु प्रायः व्यवहार में यही होता था यज्ञ के अर्थ देवपूजा संगतिकरण और दान हैं। यज्ञ भुवन की नाभि है यज्ञ के विना संसार की स्थिति होना दुस्तर है यज्ञ केवल इसीलिये नहीं होता है कि उससे केवल जल वायु की शुद्धि ही इष्ट हो यज्ञ से लोक में बहुत कुछ कार्य होते हैं। रघुकुल को वंशहीन होने से यज्ञ ही ने बचाया है अब भी भयंकर रोगों का आक्रमण होने पर हमारे पौराणिक भाई शत-चंडी करने को दौड़ते हैं। चाहे इस समय उससे कार्य लेने की विधि उनके हाथ में नहीं परन्तु इतना ज्ञान अवश्य है कि महा मारी रूप रोगों के तीक्ष्ण आक्रमण समय में जब कि बड़े २ वैद्यों की औषधियां निरर्थक प्रतीत होती हैं और वैद्य भी ऐसे रोगों

का सामना करना अपना प्राण देना ही समझते हैं उस समय आयुर्वेद वेत्ता ऋषिगण एक स्थान पर बैठ कर आयुर्वेद के चमत्कृत योगों द्वारा अपनी रक्षा और जनता के अनेक प्राण रूप सन्तानो की रक्षा हवन देव ही द्वारा करते थे। प्राणघातक रोगों के परमाणुओं को सहस्रों कोश पर्वतों की खाड़ियों में पहुँचा दम मारते थे। यज्ञ के द्वारा द्युलोक की स्थिति होती है यज्ञों की महिमा देखने से विदित होता है कि यज्ञ एक वा दो दिन का कार्य नहीं एक २ सहस्र वर्षों के यज्ञ होते थे लोक की स्थिति के अर्थ सब देशों में यज्ञ नित्य ही बना रहना वेदों की आज्ञा है इस कार्य के अर्थ न्यून से न्यून सृष्टि के मनुष्यों में से एक चौथाई भाग की आवश्यकता है जिस चौथाई भागने सर्वदा वेदों का पठन और यह यज्ञ का कार्य भार अपने आधीन करा वही ब्राह्मण कहे वा कहने योग्य थे उन्हीं के लिये ये पद है कि वे ही लोक के रक्षक और वेद के अधिकारी हैं षडंग वेदपठन और उक्त यज्ञों का अनुष्ठान दोही कर्म्म ब्राह्मण के मुख्य हैं शेष गौण है। यह भी विदित हो कि कार्य में कुशलता उसी की होती है जो केवल उसी कार्य को करता है सभी पढ़े हुए अध्यायकी करनेमें कुशल नहीं होते आध्यायकी ही करता है वही अध्यापक होता है। एवम् कार्य को जितने पुरुषों ने अपने ऊपर लिया वे वंश के वंश सदा उसी कार्य में रहे इसी से उनको निपुणता हुई। यज्ञ सा ऐसा महान् कार्य विधिपूर्वक न हो तो और क्या होगा इस प्रकार के यज्ञकर्ताओं को अयुर्वेद ज्ञान की विशेष आवश्यकता है वह है अथर्ववेद में इसी लिये यज्ञ को सांगोपांग करने के अर्थ अथर्व के ज्ञान की आवश्यकता विशेष है। ब्राह्मण ग्रन्थ में इसी प्रकार के यज्ञों के अर्थ इतनी कठिनता दिखाई है यज्ञ विषय में हमें बहुत कुछ लिखना था परन्तु लेख बढ़ जाने के भय से इतना ही पर्याप्त समझा इसमें भी संकेत रूप से

रूप से बहुत वार्ताओं का समावेश होगया है। ग्रन्थकर्ता ने तो यज्ञ के सामान्य अर्थों को ग्रहण कर यह लेख दिया था चाहे यज्ञ एक मिष मात्र हो उसमें आये भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, रक्षसादि शब्दों को दिखाना इष्ट था। इस विषय का समाधान हम पूर्व ही कर चुके हैं कि ये उक्त संज्ञा उत्तम मध्यम अधम वायुओं की है जो द्युलोक में अन्तरिक्षस्थ हैं उनसे यज्ञ की रक्षा करना आयुर्वेदवेत्ता का कार्य है कारण कि यह जानना अवश्य है कि किस कार्यपूर्त्ति वा वृद्धि क्षय के अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान कियागया है और उसके अन्तर में वाधा डालने वाला कौन है वह किस योग से हटेगा उसको यथावत् करना आयुर्वेदवेत्ता के अतिरिक्त और का कार्य नहीं। यहां तक तो ग्रन्थकर्ता ने चार वेदोंका विषय कहा आगे और वेदों का रहस्य वा रूप कहेंगे शीर्षक तो यह था कि वेदो का कर्ता कौन है इसी शीर्षकान्तर्गत उपयोगी अनुपयोगी सभी कह डाला हमें भी मार्ग में आये कंटक उलंघन करने की भांति उत्तर देने में अवशता हुई पाठकहमारे लेख विशेष की हमें क्षमा देंगे।

## [ उक्तिः ]

ईश्वरने दिगविभाग किया और प्रत्येक दिशासे एक २ वेद वनाया पूर्व से सर्पवेद, दक्षिण से पिशाचवेद, पश्चिम से असुरवेद, उत्तर से इतिहास वेद, ध्रुवा और ऊर्ध्वा से पुराणवेद वनाया गया है। इन पांच वेदों से क्रमशः करत गुहत् महत् वृहत् और तत् यह पांच महाव्याहृति निकाली गई है। आगे अमरकोश का पद्य देकर विद्याधर अप्सरा यक्ष राक्षस गंधर्व किन्नर गुह्यक सिद्ध भूत इन दशों को योनि माना है। इसके आगे मनु का एक पद्य दिया है।

मनुके इस पद्य में जो कि स० प्र० में भी उद्धृत है। गंधर्व गुह्यक यक्ष विवुधानुचर विद्याधर किन्नर सिद्धादि और अप्सरा

सुन्दर स्त्री राक्षस पिशाच इनको रजोगुण तथा तमोगुण के आधार पर योनि विशेष माना है । इसीलिये इनके वर्णन के लिये पांच वेद बनाये हैं। यद्यपि वर्तमान समय में इन वेदों का पुस्तक नहीं मिलता है। तथापि इनका आधारभूत अथर्ववेद सर्वत्र विद्यमान् है। और उसमें इन विषयों का स्पष्टरूपेण प्रतिपादन है। आजकल कहीं कहीं स्पष्टरूपेण और कहीं २ रूपान्तर में जो जो बात लौकिक में मिलती है वह सब इन्हीं पांच वेदों से ली गई हैं। पूर्व में आज भी सर्ववेद के जानने वाले विद्यमान हैं। दक्षिण में भूतविद्या के वेत्ता हैं। पश्चिम दिशा में असुर हैं। उत्तर में इतिहासज्ञ हैं। जो मनुष्य अज्ञता के कारण नहीं मानते हैं ईश्वर उनको सुबुद्धि दे। ताकि उनकी समझ में ये बातें आने लगें बिना ईश्वर की कृपा के इस प्रकार की बातें मनुष्य की बुद्धि में नहीं आ सकती हैं।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकारका इतना लेख इस विषय पर है कि विद्यमान चार वेदों के अतिरिक्त सर्पादि नाम वाले पांच वेद और भी बने जिनका पता आज दिन नहीं चलता परन्तु उन सबका आधार अथर्व है। यह लेख भी गोपथ का ही है प्रथम तो इस संस्कृत के आदि में ( स ) शब्द आया है ब्राह्मण ग्रन्थ तो पूर्व से अङ्गिरा शब्द की व्याख्या कर रहा है (स) शब्द से यहां भी अंगिरा ही का ग्रहण करता है। जिसका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि प्रत्येकपदार्थ वा तत्वको मुख्यतया तो तीन २ और इन तीन के अन्तर्गत और अनेक संज्ञा उत्पन्न होती हैं। जैसे जल की उत्तम मध्यम अधम जिनको विद्वान् कोटि के मनुष्यों ने सत् रज तम इन तीन नामों से भी ग्रहण किया है। उस अंगिरा संज्ञा वाले तमोगुण भाग से उक्त पांच प्रकार की संज्ञायें बनीं ब्राह्मण का इतना ही आशय है। ग्रन्थकार ने ( स ) शब्द से ईश्वर

का ग्रहण किया है जो गोपथ ब्राह्मण के कर्ता के आशय से नितान्त विरुद्ध है। ईश्वर का ग्रहण कर ग्रन्थकर्ता ने यह कहा है कि ईश्वर इन चार वेदों के अतिरिक्त पांच वेद और भी बनाता हुआ यह कहते यह ध्यान नहीं रहा कि मेरे पूर्व लेख में तो यत्र तत्र यह आ चुका है कि वेदों के कर्ता ऋषि हैं ईश्वर नहीं, चार तो ऋषियों ने रचे और ये पांच ईश्वर ने रचे एक विषय पर परस्पर विरोधी वाक्यों में से एक अवश्य होगा इससे ग्रन्थकार का एक कथन सर्वथा असत्य रहेगा। रहा यह कथन ( विद्याधरादि ) दश कोशकारों ने योनियां मानी हैं। इस कथन से यह नहीं दिखाया है कि इससे यह सिद्ध हुआ हम भी मानते हैं कि ये योनियां हैं। द्युलोक में नक्षत्रों तथा वायुओं एवम् जलादि की कोटियों की अनेक संख्या है। स्त्री मनुष्यों तथा बालक बालिकाओं के पार्थिव शरीरों के स्वभाव आकृति देवगण ही से बनते हैं यह प्रत्यक्ष ही है कि मनुष्यों के शरीर में भीतर कुछ नहीं बाहर ही से सब कुछ जाता है। अन्न जल वायु धूप धुवां सत्वगुण रजोगुण तमोगुण रूप यौवन सब कुछ द्युलोकस्थ देवगण ही से बनता है जैसे नेत्रों की शक्ति का वर्द्धक सूर्य और मनकी शक्तियों का वर्द्धक चन्द्रमा है इसी प्रकार द्युलोक में मानवी प्रजा की प्रत्येक शक्ति के उत्पन्न करने वालों की एक २ कोटि है उन्हीं से सबका पालन होता है ये सब नक्षत्रगण हैं। आपके माने स्त्री पुरुष विशेष नगरनिवासी नहीं। आपके दिये मनु पद्य ने हमारे आशय की पुष्टि और आपके मन्तव्य का खण्डन और भी स्पष्टरूपेण कर दिया। मनु कहता है कि पद्य में कहीं नक्षत्र गणों की कोटियों में गंधर्व गुह्यक यक्ष और विबुध और अप्सरादि रजोगुण की उत्तम गति वाले हैं। राक्षस पिशाच तमोगुण की उत्तम गति वाले हैं चन्द्र और सूर्य इन कोषों के द्वारा प्रजा के अनेक प्रकार के गुणों को स्थापन करते हैं। क्या यह आपको

विदित नहीं कि नक्षत्रगणों की ज्योतिर्विदों ने स्त्री पुरुष और नपुंसकादि संज्ञा बांधी हैं। स्त्री पुरुष नक्षत्रों के योग से वृष्टि का होना अवश्य ही होता है। स्त्री नक्षत्रों पर चन्द्रमा के आने के समय विवाह काल कहा है इत्यादि अनेक वार्ता इस प्रकारके ज्ञानसे उत्पन्न होती है। आपके मन्तव्यानुकूल मानने से कुछ भी ज्ञान विशेष नहीं होता वेदों के ज्ञान से यथार्थ व्यवहार करने पर अनेक रहस्य हस्तगत होते हैं आप आपने विद्यधरादि को अपने इष्ट साधनमें निरर्थक ही रहेंगे। जैसी बात आपकी बुद्धि में आती है यह अनुग्रह प्रभुका आप पर ही रहै विचार शीलों की बुद्धि में असंगत और निरर्थक बात नहीं आया करती। आगे भी आपने गोपथ का ही प्रमाण दिया है।

## [ उक्तिः ]

इस प्रकार यह सब वेद बनाये गये जिनमें कल्प रहस्य ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास अन्वाख्यान पुराण स्वर संस्कार निरुक्त अनुशासन अनुमार्जन वाकोवाक्य यह सब अङ्गांगि भाव से मिले हुए हैं। वेद अङ्ग हैं विना अङ्ग के अङ्गी नहीं बनता है जिस प्रकार हस्त पाद आदि अङ्गों के विना अङ्गी, मनुष्य नहीं होता इसी प्रकार कल्पादि अङ्गों के विना अङ्गी वेद भी अपने अभिप्राय को प्रकट नहीं कर सकता है। यही नियम अनादि काल से चला आता है। अङ्गी वेद के नित्य होने पर ये अङ्ग भी नित्य ठहरते हैं। इसके आगे अथर्व का मन्त्र दिया है।

अथर्व के ये मन्त्र हैं। इसमें ऋगादि चार वेदों के साथ इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी इन चारों का भी नाम आता है। इनके बीच बीच में चकार के आने से सब पृथक् २ होते हैं। कोई मिल नहीं सकता है। ऋग्वेद में कक्षीवान् का यजुः में दध्यङ् ऋषि का

अथर्ववेद में परीक्षित का इतिहास प्रसिद्ध है। यदि इन शब्दों का अर्थान्तर माना जाय तो आगे पीछे के मन्त्रों की संगति नहीं मिलती नाराशंसी शब्द का अर्थ ही नर स्तुति है इसलिये सब भी किसी न किसी रूप में नित्य ठहरते हैं।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता ने इतने लेख से एक तो चारों वेदों के साथ इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी आदि का होना और वेदों में इतिहास सिद्ध करने का साहस किया है और साथ में वेदों को नित्य कहते हुए उसमें आये इतिहासादि को भी नित्य होने की प्रतिज्ञा की है। परन्तु यह नहीं विचारा कि नित्यानित्यता का वस्तुतः स्वरूप ऋषियों ने क्या माना है। जब प्रकृति जीव ईश्वर इन तीनों का अनादित्व सिद्ध है फिर अनित्य क्या ठहरेगा? लोक में जो कुछ भी वर्तमान है वा था तथैव होगा सब इन्हीं तीनों के अन्तर्गत है केवल रचना मात्र में परिणत होने के नाम ही का अनित्य शब्द से व्यवहार किया गया है। विचारशीलों के विचार से तो प्रभु की रचना में दम मारने का ठिकाना ही नहीं जो कुछ भी है वह अनुभव से ही जाना जाता है कथन व्यवहार मात्र है बिना कथन के व्यवहार नहीं होता यदि आपको यह अभिमान हो कि हम वाणी के द्वारा सब कुछ कर सकते हैं यह विचारशून्यता है। एक पदार्थ का साक्षात् करके नहीं दिखा सकते यदि कोई आपसे यह प्रश्न करे कि मिष्ट रस का स्वाद किस प्रकार का होता है वा पीत हरित लाल वर्ण कैसे होते हैं इसके उत्तर में वाणी मौन धारण कर यही उपाय सूझेगा कि अमुक स्वाद को जिह्वा से और वर्णों को नेत्रों से ग्रहण करो यह कार्य्य तो उसकी इन्द्रियां करेंगी। आपका इसमें क्या कर्तव्य रहा इस प्रकार रचना का विशेष ज्ञान अनुभव से होता है अनुभव यह बता रहा है कि

नित्यानित्य का जैसा रूप हमने मान रक्खा है वैसा नहीं पदार्थ सब नित्य हैं। केवल रचना मात्र में व्यवहारार्थ यह संज्ञा बांधी गई है यदि और विचार विशेष से कार्य लो तो संसार भर के पदार्थों को वेद ही तो बताता है यदि वेद संज्ञा रूप से कुछ न कहै तो आप संज्ञियो के बनाने में कैसे समर्थ हो सकते हैं वेद व्यवहार मात्र का शिक्षक है हमारे व्यवहारों के अर्थ सभी कुछ वेद में कहा गया है। जिन इतिहासों का वर्णन आपने अपनी कल्पना से वेदों में दिखाया है वह सब वेद के आलंकारिक शब्द हैं। आपके माने हुए व्यक्तिविशेष नहीं आपने अथर्ववेद में परीक्षित का इतिहास कहा है वह आपकी ग्रन्थ चुंबकता का परिणाम है विदित होता है कि आप समस्त ग्रन्थ को नहीं देखते यदि देखते तो अथर्व में परीक्षित का इतिहास दिखा लोक में प्रतिष्ठा भङ्ग न कराते जिस इतिहास पर आपने वेदों को अनित्य ठहराने का बीड़ा चाबा है उसके विषय में गोपथ ही क्या कहता है ( संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षीयतीति अथो खल्वाहुः अग्निर्वैपरिक्षित् अग्निर्हीदं सर्वं परिक्षीयतीति ) संवत्सर परिक्षित् है इसी में सब का क्षीण होता है अग्नि परिक्षित् है अग्नि से सब का क्षय होता है। गोपथ की इस व्याख्या से कहां गये आपके यजमान जी परिक्षित्। अब अपने नाराशंसी शब्दकी रक्षा कीजिये इनका भी पयान होता है (प्रजा वै नरः वाक् शंसः प्रजासु तद्वाचं दधाति ) प्रजा का नाम नर है उसमें जो वाणी को धारण करै वह नाराशंस है। आप इन स्थलों को स्वयं विचारैं पूर्व कथन का खण्डन आपका माना हुआ ग्रन्थ ही कर रहा है। हमने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा।

## [ उक्तिः ]

यह भी गोपथ का ही प्रमाण दिया है।

इस प्रमाण से पृथिवी आदि लोक अग्नि आदि देवता ऋगादि वेद अनादि काल से चले आते हैं। अग्नि आदि नामों वाले सृष्टि के आरंभ में ऋषि हुए हैं जिनका मूलतत्व वेद के इन प्रमाणों से अवगत होता है। इसीलिये हम निडर होकर वेद के कर्ताओं को ऋषि कहते हैं और ( सहप्रमाऋषयः ) इस मन्त्र के आधार पर उनको निश्चयात्मक ज्ञान युक्त मानते हैं।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता ने इस लेख में कुछ मन्त्र देकर उसमें वसिष्ट को ऋषि कहा है प्रथम तो वसिष्ट को कोई व्यक्ति विशेष नमानता हुआ गोपथ ब्राह्मण ही कहता है कि (सर्वेषु श्रेष्ठः) वशिष्टः जो सबमें श्रेष्ट हो वह वशिष्ट है जो ईश्वरके अतिरिक्त अन्यमें नहीं घटता वेदके कर्तृत्व विषय में आया वशिष्ट शब्द ब्रह्म में ही घटता है मन्त्रों के द्रष्टा होने में अन्य पर भी घट सकता है। आप तो सभी बातों को निडर होकर करते हैं आपको न लोकभय है न ईश्वर का भय है भय तो आपके भीतर स्यात् ईश्वर रचना ही भूल गया ऐसा प्रतीत होता है सबसे अधिक भय ईश्वर का है कि जिसके भय से वायु चलता है सूर्य्य तपता है जब उसी का भय नहीं तो औरों का भय आपके सन्मुख क्या वस्तु है। परमात्मा आपको निडरही रक्खे कारण कि जिनके आत्माओंमें भय होता है वे सदा कल्याण पथसे गमनकरते हैं निडर इसके विपरीत मार्गसे जाते हैं आप ऋषियों को ही वेदकर्ता माने जाइये इसमें औरों की क्या हांनि परन्तु यह स्मरण रहै कि इसमें आपके ही कथन ने दशों स्थानों पर आपका खण्डन किया है उस पर भी ध्यान रखिये लोक में एक बात कहनेवालेकी बात मानी जाती है आपही अपने करे को भरे जाइये औरों का भरोसा करना आपकी भूल है श्री पं० जी संसार की नित्यता तथा अनित्यता पर ध्यान

दीजिये दूसरों से रुष्ट होकर अपने गृहमें अग्नि मत लगाओ अपना परलोक सुधारो भलाई करके चलो तुह्मारा भी भगवान् भलाही करेगा ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हो और वेदको अपना सर्वस्व बता उसकी मूलपर कुल्हाड़ा मत चलाओ शाखापर बैठ कर शाखा काटने वाला स्वयं अपने प्राणों को हवन करता है इसमें औरों का कुछ नहीं विगड़ेगा आगे आपको अधिकार है।

वेदके कर्तृत्व का वर्णन समाप्त होगया इसका शीर्षक था वेदका कर्ता कौन है इसमें जितनी योग्यता ग्रन्थकर्ता ने दिखाई वह विदित ही होगई। इसके आगे लेख चलता है वेदों का काल क्या है इसको शीर्षक निम्नलिखित है।

## [ उक्तिः ]

## वेद किस समय में हुआ ?

इस विषय में अवतक किसी ने कुछ नहीं लिखा है। आजकल जितने ग्रन्थ मिलते हैं वे सब इस विषय में चुप हैं। और ग्रन्थों में वेद और वेदमें भी ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इस बात को सब विद्वान् मानते हैं। परन्तु इसकी रचना किस समय हुई यह कोई नहीं कह सकता है। स० प्र० के सम्पादक ने किसी ग्रन्थ के आधार पर नहीं किन्तु अपनी कल्पना के आधार पर ही सृष्टि के आरम्भकाल को ही वेदाविर्भाव का समय माना है। सृष्टि को वने अभीतक (१६७२६४६०१८)इतने वर्ष हुए हैं। इसका पता आजकल के पञ्चांगो में मिलता है। और देव पितृ कार्य्यों के आरम्भ में पढ़ा हुआ संकल्प इस बात को अभी तक बतलाता है। कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित प्रत्येक कार्य्य के आरम्भ में। (ॐतत्सद्ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे) इस प्रकार संकल्प पढ़ते हैं सृष्टि समय का स्मरण देश काल ज्ञान नक्षत्रों का शुभाशुभ परिज्ञान अपनी वंश परंपरा का परिचय कर्म का उद्देश्य इत्यादि संकल्प

पढ़ने के प्रयोजन हैं। संकल्प के आधार पर जिस समय को सृष्टि का आरम्भ समय माना जाता है वह समय दैवी सृष्टि का नहीं किन्तु मानवी सृष्टि का है दैवी सृष्टिका समय इससे भिन्न है।

## [प्रत्युक्तिः]

इस लेख से जो ग्रन्थकारने वेदों का समय प्रतीत करने के अर्थ दिया है यह पता नहीं चलता कि क्या सिद्ध करना चाहते हैं। कभी कहते हैं इस विषय में सब मौन हैं। फिर कहते हैं कि यतिवर स्वामी दयानन्दने अपनी कल्पना से वेदोत्पत्ति का काल माना है प्रमाण कुछ नहीं दिया। आपही अपने कथन में कहते हैं कि पूर्वजों ने संकल्प से सृष्टिकाल बताया है कितना अनर्थक कथन है। जिस संकल्प के आधार पर इनके पूर्वजों ने वेदोत्पत्ति का काल माना है उसी आधार पर स्वामी दयानन्द ने वेदोत्पत्ति का समय माना उसके विषय में यह कहना कि यतिवर स्वामी दयानन्द ने अपनी कल्पना की है कितना असत्य है। फिर कहते हैं कि यह काल मानवी सृष्टिका है दैवी का नहीं विचार करने वालों को तो इस विषय में विवाद का अवकाश ही नहीं कारण कि वेदों का संबंध मानवी प्रजा से है जब वह प्रजा हुई तभी वेदों का आविर्भाव हुआ वैदिक मतावलम्बियों का यह सिद्धान्त अकाट्य है आपका तात्पर्य तो दैवी सृष्टि से यह है कि चलने फिरने वाले देव उत्पन्न हुए और मन्वादि ऋषियों ने माना है कि खगोलरचना को दैवीरचना कहते हैं आधार के पश्चात् ही आधेय प्रजा का होना सम्भव है। जब मानवी प्रजा हुई तभी वेदों की आवश्यकता हुई इससे वेदों का समय भी वही माना जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस विषय में हाथ पैर पीटने की कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ग्रन्थ-कर्ता का यह कथन किस आधार पर है कि वेदों में ऋग्वेद सबसे

प्राचीन है। किसी वैदिक सिद्धान्त के पुस्तक में देखा वा केवल पाश्चात्य विद्वानों के कथन ही से इसे आपने सर्वसम्मत कह दिया वेदोत्पत्ति के विषय में किसी ऋषिने तो वेदों में किसी को आगे पीछे माना नहीं। क्यों ऐसे निराधार लेखों से अपना और जनता का काल नष्ट करते हो। आगे एक मन्त्र देकर भी इसी विषय का उल्लेख है।

[ उक्तिः ]

इस मन्त्र में सृष्टि होने के अनन्तर मानवीसृष्टि होने का निर्देश है इसीलिये (अर्वाक् देवा अस्य विसर्जनेन) ऐसा पाठ मन्त्र में आया है।

[ प्रत्युक्तिः ]

इसका उत्तर हमारे पिछले लेख में आगया आधार आधेय से पीछे ही होता है।

[ उक्तिः ]

इस उपनिषद् के इस वाक्य कदंब में सृष्टिक्रमका वर्णन है। इस में अमैथुनी सृष्टि का कहीं भी वर्णन नहीं है। दैवी और मानुषी का है पदार्थ विज्ञान वाले पृथिव्यादि लोक लोकान्तों की रचना के लिये अनेक वर्षों का काल मानते हैं। इन पांच तत्वों के विना सृष्टि बन नहीं सकती है। इसलिये पृथिव्यादि दैवी सृष्टि के बाद ही सांकल्पिक शरीर वाले अमैथुन जन्य देवताओं ने मानवी सृष्टि के आरम्भ काल में वेदों का आविर्भाव किया है। यह सिद्ध होता है। इसका अधिक विवेचन ( वैदिक सिद्धान्त वर्णन काव्य ) में किया है। हम प्रमाणवाद के मानने वाले हैं। तर्कवाद को नहीं इसलिये जबतक हमको आर्षग्रन्थों के अन्य प्रमाण न मिलेंगे तब तक इस विषय में अधिक कुछ नहीं लिखेंगे।

# [ प्रत्युक्तिः ]

इस लेखमें कोई ऐसी अनूठी बात नहीं दृष्टि पड़ती कि जिसका उत्तर दिया जाय ग्रन्थकर्ता को यह इष्ट है कि जिस प्रकार हो सके यह सिद्ध करो कि वेद ईश्वर कृत नहीं पूर्व तो यह सिद्धान्त प्रकाशित किया कि ऋषियों के अतिरिक्त वेदों का कर्ता अन्य नहीं इस लेख में देवताओं को वेदकर्ता मानते हैं शब्दका प्रयोग आप करते हैं आविर्भाव जिसके अर्थ हैं प्रकाश के यदि यह सिद्ध हो गया कि वेद ईश्वरकृत हैं तब तो हम कहेंगे कि हमने कब कहा है कि वेद ईश्वरकृत नहीं है हम तो लिखते हैं किआविर्भाव हुआ और जो यह सिद्ध हो गया कि वेद ईश्वरकृत नहीं तब तो खुला हुआ आपका आविर्भाव शब्दकर्ता अर्थमें सिद्ध ही है। यह वाक्छल है चतुर ज्योतिषी भी जन्मपत्र में ऐसा ही लिखा करते हैं जब सन्तान के विषय में ज्योतिषी जी को कुछ लिखना होता है और यह निश्चय होता नहीं कि क्या होना है तब ऐसा संदिग्ध पाठ लिखते हैं कि ( पुत्रो न पुत्री ) यदि कन्या की सन्तान हुई और ज्योतिषी जी से पूछा कि महाराज कन्या हुई तब तो ज्योतिषी जी कहेंगे कि हमतो पूर्व ही लिख चुके हैं कि पुत्रोऽन पुत्री पुत्र नहीं पुत्री होगी और लड़का हुआ तो इसको फेर देंगे पुत्रो न पुत्री पुत्र होगा पुत्री नहीं और जो कुछ न हुआ तो यह अर्थ होगया कि हमारा कथन असत्य नहीं हम पूर्व लिख चुके हैं कि पुत्रो न पुत्री लड़का हो न लड़की इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग स्वयं यह कहता है कि कर्ता स्वयं संशयात्मक है ( संशयात्मा विनश्यति ) संशयात्मा स्वयं छिन्नभिन्न हो जाता है। जब ग्रन्थकर्ता का ही अपने कथन पर यह विश्वास नहीं कि जो मैं कहता हूँ इसमें सत्यता कितनी है तो फिर औरों पर यह लांछन देना कि हमारी बात कोनहीं मानेंगे वृथा है। इस विषय में सब आर्षग्रन्थ सहमत हैं कि सृष्टि रचनाके अर्थ काल की अपेक्षा

है मनु में स्पष्ट है कि ( उषित्वा परिवत्सरम् ) वेदों का प्रादुर्भाव मानवी सृष्टि से सम्बन्ध रखता है और मानवी सृष्टि के होने पर ही उसका उपदेश हुआ वही उसकी उत्पत्ति का काल है। यह आपके कथन में पूर्व आचुका है कि मनु के कथनानुसार ऋषियों से पितर और पितरों से देव तत्पश्चात् मानवी सृष्टि हुई मनु में आये ऋषि सब दिशाओं में व्याप्त सूक्ष्म वायु हैं अन्तरिक्ष स्थानी वायुओं का नाम पितर चमकने वाली सृष्टि का नाम देव है इन आधारों के पश्चात् मानवी प्रजा हुई। यदि आपके मत से ये सब चैतन्य हैं तो सब से पूर्व हुए ऋषियों को वेद ज्ञान था वा नहीं यदि था तो उनको छोड़ तीसरी कोटि के देवताओं से वेदों का आविर्भाव क्यों माना क्या ऋषि वेदों से शून्य रहे। यह निश्चित है कि सत्य बात एक ही होती है सच्च कहने वाले साक्षी से सच बात जितनी बार पूछो वही एक कहैगा और झूठे साक्षी का कथन जितनी बार पूछो पृथक् २ होगा इसी प्रकार आपका कथन वेदोत्पत्ति वा आविर्भाव इसी ग्रन्थ में कितने प्रकार का आया कहीं तो ऋषियों को वेदों का कर्ता बताया कहीं ब्रह्मा को कहीं देवताओं को इसलिये इस प्रकार का कथन कि जिसका पदे २ परिवर्तन हो असत्य है असत्य को कोई नहीं मानेगा असत्यवादी पुरुष अच्छा नहीं माना जाता यह आप का विपरीत कथन प्रत्यक्ष है आप स्वयं देखते हैं हाथ कंगन को आरसी क्या।

## [ उक्तिः ]

### ( वेदत्रयी वेदचतुष्टयी वा )

इस विषय में विद्वानों का बड़ा मतभेद है ब्राह्मण से लेकर अब तक के ग्रन्थों में इस मतभेद का प्रचार चला आता है। दो चार विद्वानों को छोड़ कर बाकी सभी विद्वान् वेदत्रयी को सिद्ध करते

चले आये हैं। हम इस विषय में अपनी ओर से कुछ न लिख कर दोनों पक्षों का प्रमाण ही उद्धृत करते हैं। इसके नीचे कुछ मन्त्र दे कर बताया है कि इन मन्त्रों में तथा इनसे अतिरिक्त अन्य अनेक मन्त्रों में तीन वेदों का ही नाम आता है चौथे का नहीं इसीलिये कर्मोपासनाज्ञानात्मक त्रिकाण्ड वेद अनेक आचार्य्यों ने माना है इसके पश्चात् शतपथ का लेख है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों से भी वेद तीन ही सिद्ध होते हैं। चार नहीं इसीलिये इसका नाम त्रयी विद्या कर के भी आता है। जैसे यहां छान्दोग्य का प्रमाण है। इस प्रकार अन्य कई वचन भी त्रयी विद्या का समर्थन करते हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मक है और वेदत्रयी में भी गुणत्रयी का ही वर्णन किया गया है। इसीलिये भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने ( त्रैगुण्य० ) ऐसा गीता में कहा है। अब हम इस पर कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड आचार्य जैमिनि मुनि का मत उद्धृत करते हैं। देखिए अर्थवश से जहां पर पादव्यवस्था की गई वह ऋक्, साम पूर्वक मन्त्रों को साम और शेष गद्यपद्यात्मक मिश्रित भाग को यजुः कहा गया है। चौथा कोई मन्त्र का भेद नहीं इसलिये वेद भी तीन ही हैं। ( इतना जैमिनि का मत है ) आगे १ पद्य मनु का है यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग्यजुः साम लक्षण सनातन अनादि काल से आये हुए (त्रयंब्रह्म) तीन वेदों को अग्नि वायु रवियों से दुहा गया इस पद्य में ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है। ईश्वर का नहीं। प्रजापति ने तीन वेदों से अकार उकार और मकार को दुहा साथ ही भूर्भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियों को भी दुहा। प्रजापति ने सावित्री मन्त्र का एक एक पाद ( त्रिभ्यएव ) तीन ही वेदों से निकाला इन प्रमाणों से तीन ही वेद सिद्ध होते हैं चार नहीं। इस पर हम ऋ० भा० भू० के सम्पादक की सम्मति देते हैं। ( यहां एक संस्कृत गद्य स्वामी जी का दिया है ) इसका अनुवाद भी हम उनका ही किया हुआ देते

हैं। देखिये ! ऐसे ही तीन वेदों में जो २ विद्या हैं उन सबके ( शेप भाग की ) पूर्त्ति विधान सब विद्याओं की रक्षा और संशय निवृत्ति के लिये अथर्ववेद चौथा गिना गया है । इस अनुवाद में स्पष्ट रूपेण ऋ० भा० भू० के सम्पादक अथर्व को शेप भाग कह चुके हैं और साथ ही तीन वेदों को अशक्त और संशयाक्रान्त मान चुके हैं। परन्तु हम इस मत से सहमत नहीं हैं। जब वेद ही संशयाक्रान्त रहेंगे तब फिर औरों की निवृत्ति कौन करेगा हमारी सम्मति में तो वेदों का प्रत्येक मन्त्र निःशंक और स्वतः प्रमाण है। अब हम वेद चतुष्टयी के प्रमाण लिखते हैं।

## [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकर्ता के इस लम्बायमान लेख में समस्त बल त्रयोविद्या की पुष्टि में लगाया है। हमें भी इतने ही भाग पर कुछ कहना है प्रथम तो ग्रन्थकर्ता के ही दिये हुए प्रमाण उनके मत की पुष्टि नहीं करते द्वितीय त्रयी शब्द अपने विषय को स्वयं पुष्ट कर रहा है। ऋषियों के त्रयी शब्द कहने से यह विदित होता है कि ऋषि गण ज्ञान तीन प्रकार का मानते हैं कारण कि त्रयी शब्द स्त्री लिंग विद्या के साथ लगाया गया है पुस्तकों की संख्या के साथ नहीं लगाया गया जिससे स्पष्ट विदित होता है कि वेद चाहे संख्या में चार हों वा एक दो तीन हों विषय उसके तीन ही हैं। इसीलिये त्रयोविद्या शब्द कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि ज्ञान के तीन विभाग हैं। वस्तुतः प्रत्येक से इन्हीं तीन विधियों से कार्य लिया जाता है। प्रथम जानना फिर प्रयोग करना तत्पश्चात् फलकी प्राप्ति होती है इन्हीं तीन विषयों का वर्णन वेदोपदेश में पाया जाता है। ग्रन्थकर्ता ने कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित जैमिनि का प्रमाण जो दिया है वह प्रमाण वेदों का तीन संख्या में होना न बता

कर तीन प्रकार के ज्ञान वाली श्रुतियों का स्पष्ट ज्ञान कराता है वेदों के देखने से भी यह प्रतीत होता है कि चारों वेदों में ज्ञान काण्ड कर्म्मकाण्ड तथा उपासना काण्ड का समावेश है। उसका स्पष्ट ज्ञान होने के अर्थ जैमिनि मुनि ने यह बताया है कि अमुक २ रचना से अमुक २ विषय जानना चाहिये यह संख्या नहीं बताई कि अमुक २ वेद इतना है। जब ग्रंथकर्ता का दिया प्रमाण ही उनके मत की पुष्टि नहीं करता फिर अन्य प्रमाण देने की आवश्यकता ही नहीं रही। वेद चार हैं और उनका कर्ता ब्रह्म है ऋषियों का यह सिद्धान्त सनातन से चला आता है विषय उनके तीन ही हैं इसको न समझ इतस्ततः भ्रमण यही सिद्ध करता है कि इस पर विचार ही नहीं किया गया। चारों वेदों का उल्लेख अनेक स्थानों में आता है। स्वयं वेद ही कहता है (अथर्वांगिरसो मुखम्) जब वेद ही में ऋग्यजुः साम के साथ अथर्व वेद का भी नाम आता है तो यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि वेद तीन ही हैं चौथा अथर्व वेद नहीं है। ग्रन्थकर्ता ने अथर्व वेद के विषय में ऋ० भा० भू० के सम्पादक का लेख देकर एक मारके का कार्य किया है परन्तु उसके तात्पर्य को स्वयं कुछ नहीं समझे प्रथम तो यह सोचना था कि यतिवर स्वामी दयानन्द ने तो छंदांसि शब्द से स्वयं अथर्व को माना है फिर वही अथर्व के विषय में ऐसा कहते कि तीन वेदों का शेष भाग वा तीनों वेदों के संशयात्मक विषयों को खोलने के अर्थ अथर्व चौथा वेद माना गया। क्या शेष शब्द आ जाने से ही यह सिद्ध हो गया कि अथर्ववेद संज्ञा वाला नहीं। जहां से किसी वस्तु का आरम्भ हो और समस्त सांगोपांग बन जाय वस्तु के समस्त अंगों को पूर्ण करने के पश्चात् जो बचे वह भाग शेष नाम से विचारशीलों ने ग्रहण किया है क्या ईश्वर का नाम शेष नहीं यदि है तो आपके कथनानुसार तो यही अर्थ होगा

कि समस्त रचना के पश्चात् ईश्वर भी रचा गया। विद्वान् हृदय से बोला करते हैं और मूर्ख जिह्वा से, विद्वान् की जिह्वा उसके हृदय में रहती है और मूर्ख का हृदय उसकी जिह्वा पर यतिवर स्वामी दयानन्द ने अथर्व के लिये शेप का शब्द कह कर अ थं का वेदत्व ही कहा है। यावत् ग्रन्थ आज पर्य्यन्त ऋषियों के बनाये दृष्टि आते हैं उन सब में वेदों का ही अनुकरण पाया जाता है। आयुर्वेद के यावत् ग्रंथ ऋषियों के बनाये विद्यमान हैं उनके देखने से यही पता चलता है कि उन्होंने वेदों की रचनाशैली पर ही अपना कार्य आरम्भ किया है। आयुर्वेदाचार्यों ने अपने ग्रंथों में तीन भाग रख कर ही अपने ग्रन्थ बनाये हैं। आयुर्वेद के ग्रंथों में एक भाग निदान द्वितीय भाग चिकित्सा तृतीय शारीरिक होता है एक चौथा भाग सूत्र स्थान के नाम से भी रक्खा जाता है यह सूत्रस्थान अत्यन्त उपयोगी है परन्तु चिकित्सा के मुख्य तीन ही अङ्ग माने गये हैं। एक आयुर्वेद ही पर क्या समस्त ग्रन्थकार इसी शैली का आश्रय लेते चले आते हैं। पाणिनीय ग्रन्थ में संज्ञा स्थान यही सिद्ध करता है संज्ञा के सूत्र शब्दों की सिद्धि नहीं करते आगे भट्टो जि दीक्षित ने संज्ञा के सूत्रों को पञ्चसन्धि में ग्रहण किया है। संज्ञा के सूत्र सन्धि में ग्रहण नहीं होते परन्तु विना संज्ञा प्रकरण के व्याकरण निरर्थक है इसी प्रकार वेदों का सूत्रस्थान वा संज्ञा प्रकरण अथर्व है। वेदोपदेश का क्रम है पृथिवी की ओर से ज्ञान कराकर द्युलोक पर्य्यन्त लेजाना इसीलिये अथर्व से उपदेश आरम्भ किया गया है और यही कारण है कि अथर्व को वेदों में मुख कहा गया है। जिसका तात्पर्य्य है कि अथर्व से ज्ञान आरम्भ करो वा किया जाता है। अथर्व रूप भूमिका में वा अथर्व रूप सूत्रस्थान में एवम् अथर्व रूप संज्ञाप्रकरण में जो कुछ कहा गया है उसका ही वर्णन विस्तार रूप से ऋग्यजुःसाम में कहा गया है उन समस्त भागों

के पूर्ण कथन कर चुकने पर शेष भाग अथर्व ही होना चाहिये इस से यतिवर स्वामीदयानन्द का अथर्व को शेष भाग कहना बड़े ही उच्च विचारों का बोधक है। इत्यादि अनेक कारणों से अथर्व वेद है और ईश्वरकृत है इसमें सन्देह करना नास्तिकता है वेदों को अपना सर्वस्व बताने वालों को वेदों के विषय में ऐसा कहना महती लज्जा की बात है। इसके आगे पृष्ठ ३१ से पृष्ठ ३६ पर्य्यन्त कोई बात ग्रन्थकर्ता ने ऐसी नहीं कही जिसका उत्तर देना आवश्यक हो कुछ प्रमाण वेदचतुष्टयी के दिये हैं जिसका उत्तर हमारे ऊपरके लेख में पर्याप्तरूप से आगया शेष विषय ऐसा है जो अनेकों वार विचार के लिये जनता में उद्धृत हो चुका है उस पर लेख बढ़ाना तुसों को कूटने की समान है पृष्ठ ३६ पर ग्रन्थकर्ता ने एक शीर्षक देकर वेदों के अर्थ करने की शैली का वर्णन किया है उसमें कुछ वक्तव्य विशेष की आवश्यकता प्रतीत होती है उसका विचार चलेगा।

## [ उक्तिः ]

### ( वेदार्थ प्रकार )

मुनिवर कात्यायन ने वेदों के अर्थ करने के लिये प्रत्येक वेद की सर्वानुक्रमणी अलग २ बनाकर वैदिक साहित्य का बड़ा उपकार किया है। उसमें प्रत्येक वेद के ऋषि देवता छंद स्वर लिखे हुए हैं। यही चारों बातें वेदों के अर्थ करने में उपादेय होती हैं। इनके विना वेदों का अर्थ नहीं होता। आगे लिखते हैं कि ऋगादि तीन वेदों के ऋषि और देवता हैं परन्तु अथर्व का प्रचार कम होने से उसमें ये चारों बातें छपने से रह गई हैं। कात्यायम प्रणीत अथर्व वेद की सर्वानुक्रमणी मैने स्वयं अपने नेत्रों से पं० परशुराम शास्त्री के यहां अंबाले में देखी है। उसी के आधार पर इस ग्रन्थ में मन्त्रों का अर्थ किया गया है। इत्यादि।

# [ प्रत्युक्तिः ]

ग्रन्थकार का यह कथन सत्य है कि ऋषियों ने वेदार्थ के सरल करने के अर्थ बहुत कुछ परिश्रम किया है और जहां तक देखा जाता है विना उन साधनों के सम्प्रति वेदार्थ का खुलना कठिन भी है परन्तु हमारी सम्मति में उन साधनों के साथ अर्थकर्ता का भाव शुद्ध होना अत्यावश्यक है इसमें (न विप्र दुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित्) जहां ऋषियों के किये अनेक साधन उपयोगी होते हैं वहां यदि भाव शुद्ध न हो तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। आपके पास ऋषिकृत सभी साधन उपस्थित हैं परन्तु केवल भावही शुद्ध नहीं उसी का यह कारण है कि वेदों की रक्षा के बदले अनेक दोष उसमें आपने आरोपण कर दिये। रहा आपका यह कथन कि तीन वेदों के देवता ऋषि मिलते हैं अथर्व में छपने से रहगये हैं ठीक नहीं अथर्व के मन्त्रों के देवता ऋषि हैं हा नहीं सायण से इसकी खोज नहीं हो सकी और आपने जो कात्यायनकृत सर्वानुक्रमणी देखी वह भी कात्यायन के नामसे किसी ने बनाई है अथर्व के देवता ऋषि क्यों नहीं यह विषय गहन है यहां इसका विषय यदि कहा जाय तो एक पृथक् ही ग्रन्थ बन जायगा यहां इसकी आवश्यकता भी नहीं यहां तो केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि अथर्व में ऋषि देवताओं का लगाना अपनी ही कल्पना है ऐसा करने से भी अनर्थ ही होना सम्भव है। आगे आपका यह लिखना कि बहुत से वेदशत्रुओं ने पदार्थ का करना केवल धातुओं के आधार पर कहा है धातुओं से शब्दों की उत्पत्ति मान कर वेदों को अनित्य मानते हैं हमारे मत में शब्द नित्य हैं इसमें केवल इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि क्या धातु शब्दों से बाहर हैं जो नित्य नहीं वेदार्थ के अर्थ मुख्यता तो उसके भाष्य की है जो उसके रचयिता ने स्वयं किया है यह समस्त रचना वेदों

का भाष्य है इस पर बिना दृष्टि डाले वेदों का भाष्य होना कठिन है यदि सृष्टिक्रम से वेदार्थ का मिलान हो जाय तो सब अन्य साधनों से किया ठीक है और जो सृष्टिक्रम से न मिले तो चाहे धातुओं से हो वा आपके बताये ऋषिकृत ग्रन्थों से हो सभी अनर्थ होगा। वेद स्वयं भी अपना भाष्य करता है। एक श्रुति दूसरी श्रुति का भाव खोलती है इस क्रम के बिना जाने भी वेदार्थ का ठीक होना कठिन है यदि ये बातें नहीं तो आपके ऋषिकृत ग्रन्थों का होना न होना समान है। आगे आपने इसी शब्द की नित्यता अनित्यतापर (दर्पण) ग्रन्थ का पाठ देकर अपना अभिप्राय सिद्ध किया है उससे हमें कोई तात्पर्य्य नहीं पृष्ठ ४१ पर यह सिद्ध किया है कि ऋषि किस को कहते हैं इस विषय पर विचार चलाते हैं

[ उक्तिः ]

मानव सृष्टि के आरम्भ में जिन ऋषियों ने समाधि के द्वारा मन्त्रार्थों को प्रत्यक्ष किया वही वेदमन्त्रों के ऋषि उनसे अतिरिक्त सब मुनि हैं ऋषि नहीं इसके ऊपर संस्कृत में दो प्रमाण हैं एक यास्क का और दूसरा व्याडिका इस लेख से यह सिद्ध किया है कि स्वामी दयानन्द को ऋषि कहना ठीक नहीं वहऋषि नहीं थे।

[ प्रत्युक्तिः ]

यह हम पूर्व से कहते चले आते हैं कि ग्रन्थकर्ता जो कुछ लिख रहे हैं वह लेख उनका विचारयुक्त नहीं इसी लेख में बड़े बलसे यह तत्व निकाला है कि ऋषि और मुनि दो व्यक्तियां पृथक २ हैं जो ऋषि है वह मुनि नहीं हो सकता यह कहते ग्रन्थकर्ता को यह ध्यान नहीं रहा कि यह कथन तो मेरे लिये उष्ट्रदण्ड न्याय होगा। आपके परमगुरु कविकुल गुरु कालिदास जी बताते हैं कि जो ऋषि है वही मुनि है जो ऋषिमुनि में भेद मानता वा बताता है मूर्खराज

है। (नियमापेक्षया मुनिः) रघुवंश काव्य प्रथमसर्ग श्लोक ९४ (यशोधनो धेन, मृषेर्मुमोच) द्वितीय सर्ग श्लोक १। इन दो पद्यों में एक स्थान पर वशिष्ठ को मुनि कहा दूसरे स्थान पर ऋषि बिना विचारे कह कर क्यों मुँह की खाई। विद्वानों के सिद्धान्त में ऋषि मुनि एक ही हैं यदि आप अपने प्रमाणों से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यतिवर स्वामी दयानन्द ऋषि नहीं मुनि कहे जाने चाहियें वहीं आपके मन्तव्यानुसार यतिवर का ऋषि होना सिद्ध है। अलमिति विस्तरेण। यह अवतरणिका विषय पृष्ठ ४६ पर्यन्त पूर्ण हुआ इसका अनुपयोगी लेख हमने छोड़ दिया समाज की प्रतिष्ठा भंग करने के अभिप्राय से जितना लेख ग्रन्थकारने दिया है हमें उतने ही का उत्तर देना अपना इष्ट प्रतीत होता है। शेष पर कालयापन करना अच्छा नहीं समझते इससे आगे अवश्य विवरण भाग चलता है यदि इसमें कोई विषय उत्तर के योग्य होगा तो लिखेंगे नहीं तो छोड़देगें।

४७ पृष्ठ से ग्रन्थकर्ता का तीसरा प्रकरण (आवश्यक विवरण) नाम का भाग आरम्भ होता है इसमें ग्रन्थकर्ता ने कोई मर्म की बात नहीं कही सारा प्रकरण अनावश्यकीय प्रकरण से परिपूर्ण है। कहीं स्वामी की प्रशंसा कहीं पर यतिवर की अनभिज्ञता प्रलाप रूप ही सारा कथन है। मन का यह एक लक्षण है कि जब यह किसी के अनुकूल होता है तब तो उसके अवगुण भी गुण हो जाते हैं प्रतिकूलता में गुण अवगुण दीखने लगते हैं। मनकी इसगति का विश्वास विद्वान् नहीं करते मूर्खही मनकी इस गति के दास रहते हैं इसगति के दास रहने वाले से सत्यभाषण कभी नहीं हो सकता एक स्थान पर आप लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द को पूर्व दिशा का भी ज्ञान नहीं था कौन इस बात को स्वीकार करेंगा ऐसा होता ही है कभी शीघ्रता में शब्द अशुद्ध निकल जाता है कहीं मुद्रण दोष

से छपने में रह जाता है आपकी पुस्तक देखने से विदित होता है कि आपको भाषा लिखना भी नहीं आता एक तो आपके लेखमें है का प्रयोग इतना आया है कि वह बुरा प्रतीत होता है यत्र तत्र यही देखा गया कि कहा जाता है देखा जाता है बताया जाता है जहां है की आवश्यकता भी नहीं वहां भी है का प्रयोग हुआ है कई स्थानों पर बहु वचन वे के स्थान पर वह आया है। इन प्रयोगों को देखकर भाषा पाठी भी यह कहैगा कि चाहे पण्डित जी कितने ही पण्डित क्यों नहीं भाषा तो इन को आती नहीं हमने इस प्रकार के दोष आपके प्रकट इसी लिये नहीं कि कि यह अज्ञान नहीं प्रमाद है यह आपको विदित नहीं कि विद्वान् ऐसी बातों को क्षुद्रता समझते हैं क्षुद्रता क्षुद्रों में होती है आप ही अपने धर्म कर्म की शापथ खाकर कहो कि क्या वस्तुतः स्वामी दयानन्द को प्राचीदिक् का ज्ञान नही था यदि था तो आपने क्यों झूंठ बोला झूंठ के मुह में क्या पड़ना चाहिये आप इसका पात्र हुये कि नहीं। कहीं पर आप लिखते हैं कि आर्य-समाजके विद्वानों में दो रोग हो गये हैं एकतो क्षेपक का और दूसरा काट छांट का यह भी ग्रन्थकर्ता का प्रलाप ही है सब को यह रोग है क्या आप क्षेपक नहीं मानते तुलसीकृत तथा वाल्मीकीय रामायण में जो मुम्बई में सनातन धर्म्म की ध्वजाधारों के यहां छपी है स्पष्ट लिखा है ( क्षेपक ) यदि आर्य पण्डित क्षेपक को क्षेपक कहैं तो दोष क्या है रही काट छांट की बात जहां २ आवश्यकता से विशेष वे जोड़ बात दृष्टि आती है वह तो निरर्थक समझ निकाली ही जाती है क्या आपने अपने ग्रन्थ में सूक्तों के नाम कल्पित नहीं किये । गोपथका पाठ कितना अंश कहीं का और कितना कहीं का लेकर इष्ट सिद्धि की है आर्य विद्वान् तो अश्लील और अनुपयोगीको छांटते हैं आपने तो उपयोगी को भी छांटा है इस रोग से स्यात् बिरला ही

रिक हो गिरेवान् में मुंह डालकर बात करने वाला ही अपने इस दोष को न देखेगा विद्वानोंको तो यह दोष उभयपक्ष में दीखता है यह हम अवश्य कहेंगे कि ऐसा करना नहीं चाहिये यदि इतने विषय को अनावश्यक समझा जाय तो कोष्टबद्ध करके दिखा दो परन्तु सर्वथा ही पृथक् कर देना योग्य नहीं। कहीं बाबू पार्टी के दश नियम घड़ दिये हैं इत्यादि विषयों से यह आवश्यकीय विवरण परिपूर्ण है इसका सार मात्र हमने लिख दिया है इसके आगे चौथा भाग अथर्वावेदालोचन का है उसमें अथर्व के मन्त्रों पर अपनी टीका टिप्पणी करके मन माना भाव निकाला है हम भी अब उसी विषय पर विचार करेंगे यद्यपि यह विषय बहुत विचार से संबंध रखता है तो भी हम इस मन्त्र विषय पर जहांतक होगा संक्षेप से ही विचार करेंगे पूर्व तो हमारा विचार था कि मन्त्रार्थ अच्छी प्रकार पद-पदार्थसे किया जाय परन्तु अब केवल यही विचार रह गया कि मन्त्रों पर भी संक्षेप से ही कहना उचित है प्रायः तो हम अर्थ ग्रंथ-कर्ता के ही रक्खेंगे उस पर ही अपनी सम्मति देंगे जहां शब्दार्थ में भेद होगा वहां शब्दार्थ भी देना होगा इसका कारण यह है कि ग्रंथकर्ताके ग्रंथ देखने से यह विदित हुआ कि ग्रन्थकर्ताने अपना कुछ नहीं किया इतस्ततः से वाक्य संग्रह करके रख दिये हैं उनमें केवल भावों की क्षुद्रता ही प्रतीत होती है उन क्षुद्रभावों को उच्च कोटि में परिवर्तन करने की आवश्यकता है ऐसा ही करने का विचार है। इस प्रकार करने से कार्य भी शीघ्र हो जायगा और कार्य सिद्धि भी होगी अब हम इन भागों को समाप्त करते हैं इन तीन भागों में भी हमने जहां जैसी आवश्यकता थी सब कुछ लिख दिया है पाठक अगले पिछले पाठ को स्मृति रख कर पढ़ें। जहां हमने अपनी स-म्मति दी है यदि पाठक उसे विवादास्पद समझें तो हमसे उसका प्रमाण ले लें परन्तु विचार अच्छी प्रकार होना चाहिये ओ३म् शम्।